TEXT CUT WITHIN THE BOOK ONLY

Brown Book

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182576

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H81.01
S53 Tu
Accession No. G.H. 2069

Author शर्मा, चंद्रदत्त

Title तुलसी साहित्य और सिद्धान्त १९५५

This book should be returned on or before the date last marked below.

तुलसी-साहित्य और सिद्धान्त

हमारा सर्वश्रेष्ठ आलोचनात्मक साहित्य

प्रेमचन्द, जीवन, कला और कृतित्व	हंसराज 'रहबर'
सुमित्रानन्दन पंत ,,	शचीरानी गुर्टू
महादेवी वर्मा ,,	शचीरानी गुर्टू
जयशंकर प्रसाद ,,	महावीर अधिकारी
आलोचक रामचन्द्र शुक्ल	गुलाबराय-स्नातक
हिन्दी के आलोचक	शचीरानी गुर्टू
महाकवि सूरदास	नन्ददुलारे वाजपेयी
कबीर : साहित्य और सिद्धान्त	यज्ञदत्त शर्मा
जायसी : साहित्य और सिद्धान्त	यज्ञदत्त शर्मा
सूर : साहित्य और सिद्धान्त	यज्ञदत्त शर्मा
प्रबन्ध-सागर	यज्ञदत्त शर्मा
हिन्दी काव्य-विमर्श	गुलाबराय
हिन्दी-नाटककार	जयनाथ 'नलिन'
हिन्दी-निबन्धकार	जयनाथ 'नलिन'
कहानी और कहानीकार	मोहनलाल जिज्ञासु
तुलनात्मक अध्ययन	शर्मा-रस्तोगी
मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ	डा० सावित्री सिन्हा
कामायनी दर्शन	सहल तथा स्नातक
काव्य के रूप	गुलाबराय
सिद्धान्त और अध्ययन	गुलाबराय
रोमांटिक साहित्य-शास्त्र	देवराज उपाध्याय
साहित्य-विवेचन	क्षेमचन्द्र सुमन तथा योगेन्द्रकुमार मल्लिक
साहित्य-विवेचन के सिद्धान्त	,, ,,
हिन्दी काव्यालंकार सूत्र	आचार्य विश्वेश्वर, सं० डा० नगेन्द्र
वक्रोक्तिजीवितम्	आचार्य विश्वेश्वर, सं० डा० नगेन्द्र
वाद-समीक्षा	कन्हैयालाल सहल
साहित्य, शिक्षा और संस्कृति	डा० राजेन्द्र प्रसा
भारतीय शिक्षा	डा० राजेन्द्रप्रसाद
कला और सौन्दर्य	रामकृष्ण शुक्ल 'शिलीमुख
समीक्षायण	कन्हैयालाल सहल
दृष्टि क्षण	कन्हैयालाल सहल
प्रगतिवाद की रूपरेखा	मन्मथनाथ गुप्त
साहित्य-जिज्ञासा	ललिताप्रसाद सुकुल
सन्तुलन	प्रभाकर माचवे
साहित्यानुशीलन	शिवदानसिंह चौहान
अनुसन्धान का स्वरूप	डा० सावित्री सिन्हा
हिन्दी साहित्य और उसकी प्रगति	स्नातक तथा सुमन
आलोचना के सिद्धान्त	व्यौहार राजेन्द्रसिंह

आत्माराम एण्ड संस. दिल्ली-६

तुलसी-साहित्य और सिद्धान्त

तुलसी का, उसके जीवन, समकालीन परिस्थितियों, रचनाओं और
उनकी साहित्यिक अभिव्यक्ति, भाषा, आध्यात्मिक
तत्त्व-निरूपण तथा मान्यताओं और
परम्पराओं के आधार पर मूल्यांकन

लेखक

यज्ञदत्त शर्मा

'कबीर-साहित्य और सिद्धान्त', 'सूर-साहित्य और सिद्धान्त', 'जायसी-
साहित्य और सिद्धान्त', 'प्रबन्ध सागर', 'आदर्श पत्र-लेखन',
'आदर्श भाषण-कला' इत्यादि पुस्तकों के लेखक

सादर स्वान्तःसुखार्थ

१९५५

आत्माराम एण्ड संस

प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता

काश्मीरी गेट

प्रकाशक
दीनानाथ पुरी
आत्माराम एण्ड संस
काश्मीरी गेट, दिल्ली-६

Checked 1965

[सर्वाधिकार सुरक्षित]

मूल्य : दो रुपया आठ आना

हकूमत
विश्वभारती
पहाड़गंज, नई

भूमिका

"तुलसी-साहित्य और सिद्धान्त" की रचना विद्यार्थियों के लिए की गई है। बी० ए० तथा एम० ए० के विद्यार्थियों के लिए इस पुस्तिका से अध्ययन में पर्याप्त योग मिलेगा, यह हमारा दृढ़ विश्वास है। जहाँ तक बन पड़ा है संक्षेप-से-संक्षेप में तुलसी के जीवन, उसके धार्मिक सिद्धान्त, उसकी मान्यताएँ तथा आस्थाएँ, दर्शन, सामाजिक विचार तथा साहित्य के आवश्यक पहलुओं पर विचार किया गया है। तुलसी से सम्बन्ध रखनेवाली कोई भी बात इस पुस्तक में छूटने नहीं पाई है। पुस्तक विद्यार्थियों के सम्मुख है वे स्वयं अंदाज लगायें कि यह उनके लिए कितनी उपयोगी है।

तुलसी-सम्बन्धी पूरी जानकारी से युक्त यह पुस्तक सरल ढंग और व्यर्थ के विस्तार को छोड़कर लिखी गई है। पुस्तक को अनावश्यक तूल देकर विद्यार्थियों के लिए बोझिल नहीं बनाया गया। तुलसी-साहित्य का अध्ययन रखने वाला जिज्ञासु यदि पहिले एक दृष्टि से इस पुस्तक को देख लेगा तो उसे तुलसी तथा उसके साहित्य को समझने में काफी सहायता मिलेगी। तुलसी-विषयक कोई भी ऐसी जानकारी नहीं रह जायेगी जिससे वह अपने को अपरिचित समझे।

यज्ञदत्त शर्मा

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
१. तुलसीदास की जीवनी	**९—२७**
तुलसीदास का जन्म	९
तुलसीदास का परिवार	१०
जन्म स्थान	११
बालकाल	१२
वैवाहिक जीवन	१४
जीवन का उत्तरार्ध	१६
जीवन में ख्याति	१९
अलौकिक घटनाएँ	२१
अंतिम अवस्था	२३
गोस्वामी जी की प्रकृति	२४
सारांश	२५
संक्षिप्त	२६
२. तुलसीकालीन परिस्थितियाँ तथा विचारधाराएँ	**२८—४३**
राजनैतिक स्थिति	२८
हिन्दू राजाओं की गिरावट	२८
समाज पर प्रभाव	२९
तीर्थ-स्थानों और देवालयों की स्थिति	२९
वर्णाश्रम धर्म की स्थिति	३१
मुगल शासकों का प्रभाव	३२
देश की दशा और धर्माचार्य	३२
सारांश	४१
संक्षिप्त	४३
३. तुलसी की रचनाएँ और उनकी भाषा	**४४—७६**
रामलला नहछू, वैराग्य संदीपिनी, बरवै रामायण	४८
पार्वती-मंगल, जानकी-मंगल, रामाज्ञा प्रश्न	४९
दोहावली, कृष्ण-गीतावली, बाहुक	५०

ती	५५
ाका	५८
ा मानस	६०
ी कथा का आधार	७१
	७२
संक्षिप्त	७५
की रचनाओं में साहित्यिक अभिव्यक्ति	**७७–११८**
ा	७८
मकता	८१
ता	८६
-योजना	९०
ना	९७
क्त	९८
ौष्ठव	१००
चित्रण	१०५
	११६
	११७
का आध्यात्मिक तत्व-निरूपण	**११९–१२७**
क दृष्टिकोण	११९
ा का निरूपण	१२१
ा निरूपण	१२२
निरूपण	१२३
का निरूपण	१२४
निरूपण	१२५
	१२६
ा	१२७
ी की धर्म-भावना	**१२८–१३३**
	१२८
रों का त्याग, रहस्यवाद का खण्डन	१२९

विषय
रामनाम-जप
एक्य की भावना
कर्मकाण्ड में आस्था, सारांश
संक्षिप्त

तुलसी की भक्तिधारा १३४–१

भक्ति के भेद
प्रेमाभक्ति १
प्रेमाभक्ति की आसक्तियाँ, प्रेम और भक्ति में अन्तर १
प्रेमाभक्ति के साधन, प्रेमाभक्ति की श्रेष्ठता १
प्रेमाभक्ति-मार्ग के शत्रु १
भक्त १
भक्तों के प्रकार, भक्त-महिमा, गुरु का स्थान १
सारांश १
संक्षिप्त १

तुलसी का मूल्यांकन १४५–१५

विचारक के नाते १५
साहित्यिक के नाते १५
एक भावुक भक्त के नाते १५

राम-साहित्य की परम्परा १५२–१५

रामभक्ति शाखा १५

परिशिष्ट १५७–१६

तुलसी-साहित्य का आधार १५

तुलसी-साहित्य और सिद्धान्त

अध्याय १

१. तुलसीदास की जीवनी

महाकवि तुलसीदास के जीवन-चरित्र पर विचार करने से पूर्व यह जान लना चाहिए कि इस काल के अन्य कवियों की भांति गोस्वामी तुलसीदास का भी कोई विश्वस्त जीवन-चरित्र उपलब्ध नहीं है। किस दिन और किस घड़ी उनका आविर्भाव हुआ, यह भी निश्चयात्मक रूप से कहना कठिन है परन्तु फिर भी जो साक्ष उपलब्ध है, उन्हीं के आधार पर हम तुलसीदासजी के जीवन पर प्रकाश डालने का प्रयास करेंगे।

तुलसीदास का जन्म

गोस्वामीजी के जन्म के विषय में लिखते समय तुलसी-काव्य-मर्मज्ञ पंडित रामगुलाम द्विवेदी उनका जन्म संवत् १५८९ मानते हैं। परन्तु शिवसिंह सरोज के लेखक सिंह सेंगर ने इसे संवत् १५८३ लिखा है। यह संवत् दोनों विद्वानों ने जन-श्रुति के आधार पर निश्चित् किया है। कोई प्रमाण प्रस्तुत नहीं किया। वेणी- जो कि गोस्वामी तुलसीदासजी के शिष्य कहे जाते हैं और जो बहुत दिन मी तुलसीदास के साथ रहे भी थे, लिखित **गोसांई चरित्र** के संक्षिप्त **मूलगोसांई**- बातों में जन-श्रुति की प्रचलित बातों का समर्थन होता है। परन्तु इसमें मिलने यों में से कुछ तो गणना के आधार पर ठीक उतरती हैं और कुछ ठीक नहीं उसकी बहुत-सी बातों से तो उसकी प्राचीनता साबित होती है, परन्तु बहुत ी भी हैं कि जिनके आधार पर कुछ विद्वान् उसे उतनी प्राचीन मानने से ा हैं। इसके आधार पर तुलसीदासजी का जन्म संवत् १५५४ में श्रावण मी को ठहरता है। गणना के आधार पर यह तिथि बिलकुल ठीक उतरती ा के एक संत स्वरचित घट-रामायण में अपने को तुलसी का अवतार मान

कर उनका जन्म-काल भाद्रपद शुक्ला ११ संवत् १५८९ बतलाते हैं जिसका मेल रामगुलाम द्विवेदी की निश्चित की हुई तिथि से होता है। रामचरित मास की **मानस-मयङ्क** के टीकाकार वन्दन पाठक गोस्वामीजी का जन्म संवत् १५५४ ही मानते है। आज के विद्वान् अधिकांश में इसी संवत् को ठीक मानते है। इस प्रकार हम भी इसी पर अपनी आस्था रखते हुए गोस्वामीजी का जन्म संवत् १५५४ ही ठीक समझते है।

तुलसीदास का परिवार

माता : आमतौर पर गोस्वामी तुलसीदासजी की माता का नाम हुलसी कहा जाता है। इस नाम की प्रामाणिकता अंतः साक्ष के आधार पर तो कुछ नही मिलती, परन्तु कवि के समकालीन खानखाना का प्रसिद्ध दोहा इसकी पुष्टि ~ प्रस्तुत किया जाता है :

सुर तिय नर तिय नाग तिय, सब चाहति अस होय।
गोद लिये हुलसी फिरै; तुलसी सो सुत होय॥

यों तो मानस मे भी बहुत से स्थानो पर 'हुलसी' शब्द का प्रयोग मिलता है और यह प्रयोग ऊपर भी है, परन्तु इससे गोस्वामी तुलसीदास की माता के नाम की स्पष्ट ध्वनि नहीं निकलती। हुलसी शब्द का साधारण अर्थ 'उत्साहित' होना है और वह अर्थ इस दोहे में भी ठीक बैठ जाता है। राम-कथा की महिमा के वर्णन में मानस के प्रथम सोपान में कवि लिखता है :

रामहि प्रिय पावन तुलसी सी, तुलसिदास हित हिय हुलसी सी॥

—तुलसी-रामबहोरी शुक्ल-पृष्ठ ७।

उक्त पंक्ति में हुलसी शब्द से तुलसी की माता का नाम निकालना एक खीचातानी का प्रयास है, जिसे हम मान्यता नही देते। जनश्रुति के आधार पर इनकी माता का नाम हुलसी ही प्रसिद्ध है।

पिता : तुलसीदासजी के पिता के दो नाम कहे जाते है। एक आत्माराम दुबे और दूसरा परशुराम मिश्र। श्री गुरुसहायलालजी **वृहद्रामायण महात्म्य** के आधार पर तुलसीदासजी के पिता का नाम अम्बादत्त लिखते है। इस प्रकार कवि के पिता का नाम माता के नाम की अपेक्षा अधिक भ्रमात्मक स्थिति में है और उसके विषय में निश्चयात्मक रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।

पत्नी : गोस्वामीजी की पत्नी का नाम रत्नावली बतलाया जाता है। स्त्री का नाम रत्नावली ही अधिक प्रसिद्ध है। एक दूसरे नाम 'ममता' का भी एक संत द्वारा उल्लेख मिलता है परन्तु हम इसे ठीक नहीं समझते।

गुरु : गोस्वामी तुलसीदास के गुरु नरहरिदास थे और परम्परा से इनका ही

नाम आता है। अंतः साक्ष से इसकी पुष्टि मानस के प्रारम्भ में वन्दनात्मक एक सोरठे से की जाती है :

बन्दउँ गुरु पद कंज कृपासिंधु नर रूप हरि।

इस 'नर रूप हरि' को 'नरहरि' करके नरहरिदास माना गया है। **भविष्य-पुराण** के आधार पर उनके गुरु का नाम **राघवानन्द** ठहरता है। इस विषय में भी कोई निश्चित् मत यहाँ पर स्थिर नही किया जा सकता।

जातिवर्ण: गोस्वामी तुलसीदास ब्राह्मण-कुल में जन्मे थे। इस विषय में विद्वानों में दो मत नही है, मतैक्य है। परन्तु कुछ इन्हे **सनाढ्य,** कुछ **कान्यकुब्ज,** कुछ **सारस्वत** और कुछ **सरयूपारीण** ब्राह्मण मानते है। अधिकाश विद्वानो का मत है कि यह **सरयपारीण** ब्राह्मण थे। **मूल गोसांई चरित** में इन्हें पाराशर गोत्री पत्यौजा के दुबे लिखा है, 'तुलसी परासर गोत दुबे पत्यौजा के।[1] हम इन्हे सरयूपारीण ब्राह्मण ही मानते है। अंतः साक्ष मे जो कुछ मिलता है, उससे इनकी जाति का स्पष्टी करण नही होता।

जन्मस्थान : तुलसीदासजी के जन्मस्थान के विषय मे भी अभी तक विद्वानों का मतैक्य नही हो पाया है। सर्व-सम्मत रूप मे अभी इस विषय में कुछ नही कहा जा सकता। एक मत के अनुसार चित्रकूट के पास **हाजीपुर** ग्राम में उनका जन्म हुआ था। अंग्रेज विद्वान् विल्सन तथा फ्रासीसी लेखक तासी इस कथन का प्रवर्तन करते है। रामबहोरी शुक्ल का कथन है कि चित्रकूट के पास हाजीपुर नामक कोई ग्राम नहीं है। हो सकता है कि वहाँ के एक गाँव राजपुर का नाम ही गलती से हाजीपुर लिखा गया हो। लाला सीताराम और म हात्मा रूपकलाजी उनका जन्मस्थान तारी बतलाते है। हस्तिनापुर को भी कुछ लोग तुलसीदास का जन्मस्थान मानते है। एक और मत के आधार पर एटा जिले का सोरो नामक ग्राम भी उनका जन्मस्थान माना जाता है। सोरो के विषय में बहुत-सी प्राचीन जन-श्रुतियाँ उपलब्ध है और मानस के प्रथम सोपान का यह दोहा भी प्रस्तुत किया जाता है :

---

१. (अ) **मेरे जाति पाँति न चहौं कहू की जाति पाँति,**
मेरे कोऊ काम को न हौं काहू के काम को।
—'तुलसी ग्रन्थावली', दूसरा खण्ड (कवितावली) पृष्ठ २२८

(आ) **जायो कुल मंगन बधावनो सुनि,**
भयो परिताप पाप जननी जनम को।
—'तुलसी ग्रन्थावली', दूसरा खण्ड (कवितावली) पृष्ठ २१६

(इ) **धूत कहौ अवधूत कहौ रजपूत कहौ जुलहा कहौ कोऊ।**
—'तुलसी ग्रन्थावली', दूसरा खण्ड (कवितावली) पृष्ठ २२७

मैं पुनि निज गुरु सन सुनी, कथा सो सूकर खेत।

इस 'सूकर खेत' शब्द से सोरों शब्द का निकालना भाषा-विज्ञान के आधार पर उचित नहीं ठहरता। यह अर्थ निकालना भ्रामक ही है। आज के विद्वान् अधिक मतैक्य के आधार पर बाँदा जिले के राजपुर ग्राम को ही गोस्वामी तुलसीदास का जन्मस्थान मानते हैं। हमारा विश्वास भी यही है कि राजपुर ही उनका जन्मस्थान रहा होगा।

बालकाल : ऊपर कवि की माता, पिता, जाति तथा जन्मस्थान के विषय में साधारण जानकारी देने का हमने प्रयास किया। आवश्यक सामग्री उपलब्ध न होने के कारण हम इसे पूर्ण नहीं कह सकते परन्तु जो कुछ भी सामग्री उपलब्ध है, उसके आधार पर ज्ञातव्य बातों पर प्रकाश डाला गया है। भारत में पुराने जमाने के लोगों ने इस दिशा में प्रकाश डालना आवश्यक नहीं समझा, इसलिए आज के पाठकों की जानकारी अधूरी ही बनी हुई है।

गोस्वामी तुलसीदास का जन्म अभुक्त मूल नक्षत्र में माना जाता है। ऐसे बच्चे का मुंह देखने वाले की मृत्यु हो जाती है। इसी भय से इनके पिता ने इन्हें जन्म लेते ही त्याग दिया था। कवितावली में कवि लिखता है :

जायो कुल मंगन बधायो न बजायो सुनि,
भयो परिताप पाप जननी जनक को।

कवितावली में ही एक दूसरे स्थान पर कवि लिखता है :

मातु पिता जग जाइ तज्यो, बिधि हू न लिख्यो कछु भाल भलाई।

—तुलसी-रामबहोरी शुक्ल-पृष्ठ ६

विनय पत्रिका में कवि लिखता है :

जननि जनक तज्यो जनमि, करम बिनु बिधिहू सृज्यो अवडेरे।

× × × ×

तनु तज्यो कुटिल कीट ज्यों, तज्यो मात पिता हू।

उक्त पंक्तियों के आधार पर यह सिद्ध होता है कि कवि को उनके माता-पिता ने जन्म लेते ही त्याग दिया था। इन से लोक प्रसिद्ध श्रुतियों की पुष्टि होती है।

तुलसीदासजी का प्रारम्भिक नाम **रामबोला**[1] था और जब यह घर से निकले तो इनकी दशा बहुत ही दयनीय थी। यदि इन्हें कोई थोड़ा-बहुत भी अन्न दे देता था तो उसे यह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के बराबर समझते थे। कवि की इस

१. **राम को गुलाम नाम राम बोला राख्यो राम,**
काम यहै नाम द्वै हौं कबहुँ कहत हौं।
—'तुलसी ग्रन्थावली', दूसरा खण्ड (विनय पत्रिका) पृष्ठ ५०४

बाल-काल की दशा का अंतःसाक्ष से काफी ज्ञान प्राप्त हो जाता है।[1]

ऐसी दयनीय दशा में घर से निकल कर तुलसीदास जी साधु-संतों के सत्संग से कुछ ज्ञान तथा कुछ विद्या प्राप्त करते हुए 'सूकर क्षेत्र' तक पहुँचे और वहाँ गुरु से इन्होंने राम कथा सुनी :

मैं पुनि निज गुरु सन सुनी कथा सो सूकर खेत।

परन्तु इस समय तक न तो उनका मस्तिष्क ही इतना विकसित हो पाया था कि वह उस गूढ़ कथा को समझ पाते और न उनकी विद्या का स्तर ही उतना ऊँचा हो पाया था। इसलिए वह लिखते हैं :

समुझी नहिं तस बालपन,
तब अति रहेऊँ अचेत।

परन्तु गुरु सुनाते ही रहे और बार-बार सुनाया :

तदपि कही गुरु बारहिंबारा,।

इस प्रकार यह कथा उनकी समझ में आने लगी और उन्होंने बाल-काल से ही राम कथा के मर्म को पहिचानने का प्रयास किया। उनके जीवन में राम-चरित की महिमा का समावेश यहीं से प्रारम्भ हो गया और वह बराबर बढ़ता ही गया। वह निरन्तर राम की चरचा सुनते और सुनाते रहे और उसी में निमग्न रहना प्रारम्भ कर दिया। राम की भक्ति में विलीन होकर यह बालक सीता-राम में ही सारे विश्व का अवलोकन करने लगा और सारा विश्व उसे राम की ही कला-कृति के समान दिखलाई दिया :

सीय राम मय सब जग जानी।

यहीं पर रहकर गोस्वामी तुलसीदास ने गुरु से शास्त्र, पुराण तथा अन्य रामायण काव्य इत्यादि का अध्ययन किया। मूलगोसाईं चरित में लिखा है कि तुलसीदासजी अपने गुरु के साथ काशी में पंचगंगा घाट पर स्वामी रामानन्द के स्थान पर रहने लगे थे। यहीं पर शेष सनातन भी रहते थे। यह वेद, शास्त्र, इतिहास

---

१ (अ) **जाति के सुजाति के कुजाति के पेटागि बस,**
खाए टूक सबके विदित बात दुनी सो।
—'तुलसी ग्रन्थावली', दूसरा खण्ड (कवितावली) पृष्ठ २२६-२२७

(आ) **द्वार द्वार दीनता कही काढ़ि रद परि पाहूँ।**
—'तुलसी ग्रन्थावली', दूसरा खण्ड, विनय पत्रिका) पृष्ठ-५५९

(इ) **खायो खोंची माँगि मैं तेरा नाम लिया रे।**
तेरे बल बलि आजु लौं जग जागि जिया रे॥
—'तुलसी ग्रन्थावली', दूसरा खण्ड (विनय पत्रिका) पृष्ठ ४४७

इत्यादि के मर्मज्ञ विद्वान थे। तुलसीदासजी ने बड़े मनोयोग से उनके पास रहकर अध्ययन किया। उनका यह अध्ययन पंद्रह वर्ष तक निरंतर चलता रहा। यहीं पर विद्या अध्ययन कर गोस्वामी तुलसीदासजी पारगत विद्वान हुए।

वैवाहिक जीवन :—गोस्वामीजी वैरागी गुरुद्वारा दीक्षित अवश्य हुए परन्तु वह स्वयं वैरागी नही बने थे। एक बार वैरागी होकर फिर गृहस्थ मे वापिस आना उन्हें शोभा नही दे सकता था। तुलसीदासजी का विवाह अवश्य हुआ था। इसके विषय मे दो मत नही हो सकते। कवितावली में उन्होने लिखा है :

बालेपन सूधेमन राम सनमुख गयो,
राम नाम लेत माँगि खात टूक टाक हौं।
पर्‌यो लोक रीति मे पुनीति प्रीति राम राम,
मोह बस बैठो तोरि तरक तराक हौं॥

उक्त पंक्तियो से यही आभास मिलता है कि बचपन में घर से निकाल दिये जाने पर तो उनका सीधा रुख राम-भक्ति की ओर ही हुआ परन्तु युवावस्था आने पर उनकी आसक्ति स्त्री की तरफ हो गई और इस आसक्ति ने राम की ओर से उन्हें कुछ दिन के लिए विमुख कर दिया। इस विषय मे लोक प्रसिद्ध कथा यही है कि वह अपनी स्त्री के सौदर्य-जाल मे इस कदर फँस गए थे कि उनका उसके बिना एक क्षण भी रहना असम्भव हो गया था। परन्तु यह सम्बन्ध अधिक दिन तक उनकी राम-भक्ति में बाधक न बन सका। एक दिन उनकी स्त्री अपने भाई के साथ उनसे बिना कहे ही अपने मायके चली गई। तुलसीदासजी इस वियोग को सहन न कर सके। वह भी उसके पीछे-पीछे ही अपनी ससुराल पहुँच गए। जब उनकी स्त्री ने तुलसीदास को अपने पीछे-पीछे ही आते देखा तो उसे बहुत लज्जा आई और अकस्मात उसने कहा :

लाज न लागत आपको, दौरे आयेहु साथ।
धिक-धिक ऐसे प्रेम को, कहा कहौं मै नाथ॥
अस्ति चर्म मय देह मम, तामे जैसी प्रीति।
तैसी जै श्रीराम महँ, होति न तो भवभूति॥

स्त्री की यह फटकार सुनकर तुलसीदासजी के ज्ञान-चक्षु खुल गए। चाहे उनकी स्त्री ने यह बात साधारण विचार से ही कही हो परन्तु तुलसीदास पर इसका स्थायी प्रभाव पडा और ह उलटे ही पाँव वहाँ से लौट लिए तथा प्रयाग जाकर साधू हो गए। गोस्वाम का इस जीवन-घटना का समर्थन भविष्य पुराण में आये 'नारी शिक्षा सम्वादाय' से भी होता है। प्रियदास की भक्तमाल की टीका द्वारा भी इस घटना का समर्थन होता है। गोस्वामी तुलसीदासजी भी लिखते है :

हम तो चाख्या प्रेम-रस, पत्नी के उपदेश।

गोस्वामीजी के जीवन की इस घटना का समर्थन सभी विद्वानों ने किया है और

इस विषय में मतैक्य-सा ही है। वैसे अतः साक्ष से कुछ पद ऐसे भी मिलते हैं कि जिनमें कवि ने अपने विवाहित न होने का सकेत किया है[1] परन्तु वैरागी होने के बाद महीनों गृहस्थ रहा हुआ व्यक्ति भी यह सब लिख सकता है।

देशाटन: इस प्रकार जीवन परिवर्तित होने पर गोस्वामीजी के जीवन में दबी हुई राम भक्ति की ज्वाला फिर से सुलग उठी और वह अपने इष्ट देव की खोज में देशाटन के लिए निकल पड़े। सर्व प्रथम वह राम के लीला-धाम अयोध्या नगरी में पहुँचे। वहां कुछ दिन तक रहे और वही से आपने चारो धामो की यात्रा करने का निश्चय किया। इस प्रकार वह जगन्नाथ पुरी, रामेश्वरम, द्वारावती होकर जगन्नाथपुरी गए और वहाँ से आपने मानसरोवर की यात्रा की। तुलसीदासजी ने समस्त भारतवर्ष का भ्रमण किया और अपनी आँखों से राम-लीला के क्षेत्रों को देखा तथा देश की व्यापक स्थित का भी परिचय प्राप्त किया। देश की राजनैतिक तथा सामाजिक स्थिति का भी ज्ञान प्राप्त किया और समाज की दुर्दशा के चित्र अपने हृदय मे उतार कर साहित्य में उनकी झांकी भी प्रस्तुत की। देश की आर्थिक तथा राजनैतिक दशा पर उनका ध्यान गया।

देशाटन के पश्चात तुलसीदासजी चित्रकूट पहुँचे और वही रहकर कुछ दिन अपने इष्ट देव की स्थापना की। वही रहकर आप राम-कथा कहते और वहाँ के रहने वालों को राम-रस पिलाते रहे। जनश्रुति के आधार पर यही उन्हें हनुमानजी ने एक कोढ़ी के रूप में दर्शन दिये। कोढी के रूप मे वह नित्य राम-कथा सुनने आया करते थे। इन्ही की कृपा से तुलसीदास को भगवान राम का साक्षात्कार हुआ। इस का उल्लेख इस प्रकार है :—

चित्रकूट के घाट पर, भई सन्तन की भीर।
तुलसी दास चन्दन घिसें, तिलक देत रघुबीर॥

इस प्रकार चित्रकूट पर तुलसीदासजी ने राम-दर्शन किए। राम-दर्शन के पश्चात् तुलसीदासजी फिर देशाटन के लिए निकल पड़े। इस बार की यात्रा में उन्होंने काशी, जनक पुर, नैमिषारण्य, अयोध्या, मलीहाबाद, बिठूर वृन्दावन इत्यादि स्थानों का भ्रमण किया। धर्म के प्रधान केन्द्रो की स्थिति को उन्होने अपनी आँखो से देखा और

---

१. (अ) **काहू की बेटी सों बेटा न व्याहब,**
जाहू की जाति बिगार न सोहू।
—'तुलसी ग्रन्थावली' दूसरा खण्ड (कवितावली) पृष्ठ २२७

(आ) लोग कहै पोच सोच न सोचु न संकोच,
मेरे ब्याह न बरेखी जाति पाँति न चहत हौं।
—'तुलसी ग्रन्थावली' दूसरा खण्ड (विनय पत्रिका) पृष्ठ ५०५

देश के विभिन्न स्थानों का भ्रमण किया। इस विषय में अंतः साक्ष से भी कुछ प्रकाश पड़ता है।[1]

जीवन का उत्तरार्द्ध : तुलसीदासजी चित्रकूट और अयोध्या में काफी दिन तक रहे परन्तु उनके जीवन का उत्तरार्द्ध काशी में व्यतीत हुआ। काशी में तुलसीदासजी कई स्थानों पर रहे। हनुमान फाटक, गोपाल मन्दिर, प्रह्लादघाट और संकट मोचन उनके प्रधान निवासस्थान कहे जाते हैं। जीवन के अंतिम दिनों में उन्होंने अस्सीघाट पर रहना प्रारम्भ कर दिया था। आजकल यह घाट तुलसीघाट के नाम से प्रसिद्ध है। यह घाट दक्षिण दिशा में लगभग गंगा का अन्तिम घाट है और उस समय में तो बिलकुल ही एकान्त स्थान में रहा होगा। सम्भवतः इसीलिए कवि ने इसे पसंद किया हो। इस घाट पर गोस्वामीजी की संकटमोचन की स्थापित की हुई मूर्ति आज भी मौजूद है। उसी मन्दिर में वह गुफा भी है जिसमें कभी कवि निवास करता था। वहाँ कवि की खड़ाऊँ के अतिरिक्त एक काष्ठ का टुकड़ा भी है जिसे कहा जाता है कि वह उस नाव का काठ है जिसपर बैठकर कवि गंगा पार शौचादि से निवृत होने जाया करता था।

हनुमान फाटक का स्थान उन्होंनें वहाँ के उपद्रवी मुसलमानों के कारण छोड़ दिया था। गोपाल मंदिर में उन्होंने विनय पत्रिका का कुछ अंश लिखा था। अपने मित्र गंगाराम ज्योतिषी की सहायता से संकटमोचन हनुमानजी की मूर्ति आपने नगवा पर स्थापित की।

जीवन के कुछ संपर्क : गोस्वामी तुलसीदासजी ने देश-भर का भ्रमण किया था और वह अनेकों आदमियों के सम्पर्क में आये थे। अद्वितीय विद्वान और असाधारण प्रतिभा सम्पन्न होने के कारण कवि ने अपने जीवन-काल में अनेकों लोगों को प्रभावित किया। अनेकों व्यक्ति उनके सम्पर्क में आये परन्तु उन में से जो विशेष उल्लेखनीय है उन्हीं की यहाँ हम साधारण चर्चा करेंगे। काशी में गंगारामजी ज्योतिषी तुलसीदासजी के विशेष मित्र थे और उन्हीं के लिए उन्होंने **रामाज्ञा प्रश्न** की रचना की। **रामाज्ञा प्रश्न** की पाँडुलिपि कहते हैं कि बहुत दिन तक

(अ) अब चित चेत चित्रकूटहिं चलु।
—'तुलसी ग्रन्थावली' दूसरा खण्ड (विनय पत्रिका) पृष्ठ ४७२

(आ) नौमी भौमवार मधुमासा, अवधपुरी यह चरित प्रकासा।
—'तुलसी ग्रन्थावली', पहला खण्ड (मानस) पृष्ठ २०

(इ) देव सरि सेवौं वामदेव गाँव रावरे ही,
राम नाम ही के माँगि, उदर भरत हौं।
—'तुलसी ग्रन्थावली,' दूसरा खण्ड (कवितावली) पृष्ठ २४३

ज्योतिषीजी के वंशजों के पास रही। गोस्वामीजी का एक चित्र अब भी उनके वंशजों के पास है। कहा जाता है कि इस चित्र को जहाँगीरकालीन किसी चित्रकार ने बनाया था।

काशी में तुलसीदास के एक भक्त टोडर भी रहते थे। इनकी कवि में बहुत श्रद्धा भक्ति थी। भदैनी, नगवा, इत्यादि ग्राम उन्ही के थे। जब उनकी मृत्यु हुई तो गोस्वामीजी ने स्वयं उनकी जायदाद का उनके पुत्रों में बँटवारा कराया। इस बँटवारे के पंचनामे का कुछ अंश गोस्वामीजी ने स्वयं लिखा था। यह पंचनामा संवत् १६६६ में लिखा गया था और उसकी प्रति काशी राज्य के संग्राहलय में अभी तक सुरक्षित है। गोस्वामीजी के मित्र टोडर राम-भक्त थे और इसी नाते वह तुलसीदास के सम्पर्क में आये थे। गोस्वामीजी ने नर-काव्य न रचने का व्रत किया हुआ था परन्तु अपने मित्र टोडर के लिए उन्होंने अपना यह व्रत भी तोड़ दिया। टोडर की मृत्यु पर कवि ने लिखा:

चार गाँव को ठाकुरो, मनको महा महीप।
तुलसी या कलिकाल में, अथये टोडर दीप॥
तुलसी राम सनेह को, सिर पर भारी भार।
टोडर कांधा ना दियो, सब कहि रहे उतार॥
तुलसी उर-थाला बिमल, टोडर गुन-गन बाग।
ये दोउ नैनन सींचिहौं, समुझि-समुझि अनुराग॥

शिव-उपासना की नगरी काशी में राम-भक्त तुलसी का टोडर एक सबल और अभिन्न मित्र रहा होगा। उसकी मृत्यु पर कवि के नेत्र छलछला आये और करुण स्वर प्रवाहित हो उठा।

अकबर के प्रमुख सेनाध्यक्ष रहीम भी, कहा जाता है कि, तुलसीदासजी के अभिन्न मित्र थे। रहीम ने कवि के प्रति श्रद्धा प्रकट करते हुए यह दोहा लिखा था, जिसका हम पीछे तुलसी की माता के विषय में बतलाते समय भी उल्लेख कर चुके है:

सुर तिय नर तिय नाग तिय, अस चाहत सब कोय।
गोद लिए हुलसी फिरें, तुलसी से सुत होय॥

यह भी किंवदंती के आधार पर प्रसिद्ध है कि महाराज मानसिंह भी कभी कभी गोस्वामीजी के दर्शनार्थ आया करते थे। अकबर की भी उनसे भेंट हुई थी, यह भी किंवदंती प्रचलित है। राजापुर में गोस्वामी के शिष्य गणपति के वंशजों के पास जो भूमि है और जो घाट की उतराई इत्यादि का एकाधिकार है, कहा जाता है कि यह सब अकबर बादशाह की ही कृपा का फल था। अकबर की साधु और संतों में श्रद्धा थी और हो सकता है कि रहीम खानखाना और मानसिंह इत्यादि से तुलसीदास

जी की प्रशंसा सुनकर अकबर उनके दर्शनार्थ आये हों। राजपुर यमुनातट पर आगरा और इलाहबाद के बीच पड़ता है। हो सकता है कि अकबर ने अपनी आगरा से इलाहबाद की यात्रा के दौरान मे राजपुर मे ठहर कर गोस्वामीजी से भेट की हो।

गोस्वामी तुलसीदास एक विद्वान और उदार हृदय व्यक्ति होने के नाते अपने विपरीत विचार रखने वाले व्यक्तियो से भी उसी प्रेम के साथ मिलते और सत्संग करते थे जिसके साथ कि वह राम भक्तों से करते थे। शंकराचार्य के अनुयायी मधूसूदन सरस्वती से उनकी अभिन्नता थी और वह भी गोस्वामी में बड़ी श्रद्धा भक्ति रखते थे। सिद्धान्तों मे मतैक्य न होने पर भी उनमे एक दूसरे के प्रति श्रद्धा का भाव था। मधूसूदनजी कवि के विषय में लिखते है :

आनन्द कानने कश्चिज्जंगमस्तुलसी तरुः।
कविता मंजरी यस्य राम भ्रमरभूषिता॥

इस पद का काशिराज ईश्वरीप्रसाद नारायणसिह ने हिन्दी रूपान्तर प्रस्तुत किया है :

तुलसी जंगम तरु लसै, आनंदकानन खेत।
विकता जाकी मंजरी, राम भ्रमर रस लेत॥

अर्थात : काशी रूपी आनन्दवन मे तुलसीदास एक चलता-फिरता तरु है। उस तुलसी रूपी तरु की मंजरी उसकी कविता है। उस कविता रूपी मंजरी पर राम-रूपी भ्रमर सर्वदा गूजता फिरता है। इस प्रकार अपने से विपरीत सिद्धान्तों वाले विद्वान मधूसूदन सरस्वती ने तुलसी को बहुत निकट से देखा था और साथ ही उनकी कविता का रसास्वादन भी किया था।

गोस्वामी तुलसीदासजी जिन और व्यक्तियों के अधिक निकट सम्पर्क में आये उनमें रामचद्रिका के लेखक कवि केशव का भी नाम उल्लेखनीय है। कहते है कि कवि केशव जब उनसे मिलने आये तो गोस्वामीजी किसी ध्यान में मग्न थे और उनको समुचित आदर न दे सके। इसे अपना अपमान समझकर उन्होने तुलसीदासजी का अभिमान भंग करने के लिए एक दिन रात मे रामचंद्रिका की रचना की।

भक्तमाल के लेखक नाभादासजी का नाम भी तुलसीदासजी के सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों मे उल्लेखनीय है। नाभादासजी ने भक्तमाल में गोस्वामीजी का परिचय दिया है :

त्रेता काव्य निबन्ध करी, सत कोटि रमायन।
इक अच्छर उद्धरै, ब्रह्म इत्यादि परायन॥
अब भक्तनि सुख दैन, बहुरि लीला बिस्तारी।
रामचरन रस मत्त, रहत अह निसि ब्रतधारी॥

संसार अपार के पार को, सुगम रूप नौका लयौ।
कलि कुटिल जीव निस्तार हित बाल्मीकि तुलसी भयो॥

नाभादासजी के इस पद से पता चलता है कि उस समय तक कवि काफी ख्याति प्राप्त कर चुका था। भक्तों मे उनकी ख्याति यहाँ तक बढ़ चुकी थी कि मीरा ने भी उस समय जब उसके परिवार ने उसके मार्ग मे बाधाएँ उपस्थित कीं तो गोस्वामीजी को ही आदेश के लिए लिखा :

श्री तुलसी सब सुख निधान, दुःख हरन गुसाँई।
बारहिं बार प्रनाम करूँ अब हरो शोक समुदाई॥
घर के स्वजन हमारे जेते, सबन उपधि बढ़ाई।
साधु सँग अरु भजन करन मोहि देत कलेश महाई॥
बालपने तैं मीराँ कीन्ही गिरधर लाल मिताई।
सो तौ अब छूटत नहिं क्योहू लगी लगन बरियाई॥
मेरे मात पिता के सम हो, हरिभक्तन सुखदाई।
हमको कहा उचित करिबो है सो लिखियो समुझाई॥

मीरा के इस पत्र का तुलदासजी स प्रकार उत्तर देते है :

जाके प्रिय न राम बैदेही।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम यद्धपि परम सनेही॥
तज्यो पिता प्रहलाद विभीषन बन्धु भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यो, कान्त ब्रज-बनिता, भये सब मंगलकारी॥
नातो नेह राम सों मनियत, सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं।
अंजन कहा आँख जो फूटै बहुतक कहौं कहाँ लौं॥
तुलसी सो सब भाँति परम हित, पूज्य प्रान ते प्यारो।
जासों होय सनेह राम-पद एतो मतो हमारो॥

जीवन में ख्याति : इस प्रकार तुलसीदासजी अपने समय के बहुत से व्यक्तियो के सम्पर्क मे आये और सभी ने उन्हे आदर और सम्मान के साथ देखा। जीवन के उत्तरार्द्ध-काल में गोस्वामीजी की ख्याति बहुत व्यापक हो गई थी। ऊपर दिये गये मधूसूदन सरस्वती के पद से भी यह झलकता है और इसका आभास उनकी रचनाओं में भी कई स्थानों पर आया है :

(१) छार ते सँवारि कै पहार हूँ ते भारी कियो,
गारो भयो पंच मे पुनीत पच्छ पाइ कै।[1]

१. 'तुलसी ग्रन्थावली,' दूसरा खण्ड (कवितावली) पृष्ठ २१५

(२) हौं तो सदा खर को असवार,
लिहारोइ नाम गयंद चढ़ायो।[1]

(३) घर-घर माँगे टूक पुनि भूपति पूजे पाय।
जे तुलसी तब राम बिन ते अब राम सहाय॥[2]

गोस्वामी तुलसीदास इस यश को राम-भक्ति का ही फल और प्रताप मानते थे। दोहावली में एक जगह उन्होंने लिखा है :

माँगि मधुकरी खात ते, सोवत गोड़ पसारि।
पाय प्रतिष्ठा बढ़ि परी, ताते बाढ़ी रारि॥

समाज में गोस्वामीजी ने राम-भक्त के नाते ख्याति प्राप्त की थी और लोग उनके दर्शनों के लिए उत्सुक रहा करते थे। उनका आदर भी समाज में बहुत होने लगा था। उन्हें लोक सम्मान इतना अधिक मिलना प्रारम्भ हो गया था कि उनके मन में उसके प्रति ग्लानि उत्पन्न होने लगी। इसीलिए उन्होंने लिखा :

लोकमान्यता अनल सम, कर तप कानन दाह।

वह इसे राम-भक्ति में बाधक समझने लगे थे।

तुलसी का विरोध : जहाँ तुलसी को एक ओर आदर तथा सम्मान देने वालों की कमी नही थी, वहाँ दूसरी ओर उनका विरोधी अखाड़ा भी तैयार हो रहा था। ये लोग फूटी आँखों भी तुलसी की ख्याति को बढ़ता हुआ नहीं देख सकते थे। बिना किसी मतलब के इधर-उधर की बातें करना उनका काम था :

बिन काज दाहिने बाँये

तुलसीदास का यह विरोध कट्टरपंथी रूढ़िवादियों की ओर से होता था। गोस्वामीजी की उदार धार्मिक भावना उन्हें खलती थी और उसके कारण समाज में फैली हुई उनके पाखण्ड की भ्रांति दूर होती थी जिसका प्रभाव उनकी आय और जनता पर उनके प्रभाव, दोनों पर समान रूप से पड़ता था। यहाँ तक कि वैरागी-वेश में रहने से जब उनकी जाति तक पर आक्षेप किया गया तो उन्होंने साफ कह दिया :

धूत कहौ अवधूत कहौ रजपूत कहौ जुलहा कहौ कोऊ।
काहू की बेटी सो बेटा न ब्याहब काहू की जाति बिगार न कोऊ॥

तथा :

मेरे जाति पाँति न चहौं काहू क जाति पाँति,
मेरे कोहु काम को न हौं कोहु के काम कौ।

---

१. 'तुलसीग्रन्थावली,' दूसरा खण्ड (कवितावली) पृष्ठ २१५
२. 'तुलसी ग्रन्थावली,' दूसरा खण्ड (दोहावली) पृष्ठ ११४

साधु कै असाधु कै भलो कै पोच सोच कहा,
का काहू के द्वार परौं, जो हौं सो हौं राम को।
(कवितावली)

परन्तु इस विरोध की उन्हें चिन्ता नहीं थी :

जो पै कृपा रघुपति कृपालु की बैर और के कहा सरै।
तुलसीदास रघुबीर बाहु बल सदा अभय काहू न डरै।
(विनय पत्रिका)

'अभय होय जो तुमहि डेराई' के आधार पर भय उनके पास तक फटक ही नहीं सकता था। उनके रक्षक राम हर समय उनके साथ रहते थे तो फिर भला उन्हें डर किसका।

अलौकिक घटनाएँ : गोस्वामीजी के जीवन-काल की कुछ अलौकि घटनाएँ भी प्रसिद्ध हैं। हनुमानजी और भगवान् राम के दर्शन का उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं। कहा जाता है कि हिरण के पीछे दौड़ते हुए धनुर्धर राम और लक्ष्मण के भी गोस्वामीजी को चित्रकूट में दर्शन हुए थे।

एक कथा प्रसिद्ध है कि एक दिन बादशाह ने गोस्वामीजी से कुछ चमत्कार दिखलाने को कहा। तुलसीदासजी ने इसका उत्तर दिया कि मैं इस प्रकार की करामातें नहीं जानता। इस पर बादशाह ने उन्हें बन्दी कर लिया। तब तुलसीदासजी ने हनुमानजी का स्मरण किया। हनुमानजी का स्मरण करते ही बन्दीगृह को बन्दरों ने घेर लिया और उन्होंने इतना उत्पात मचाया कि बादशाह व्याकुल हो उठा और उसे तुलसीदास की शरण में जाना पड़ा। तब तुलसीदासजी ने कहा कि अब तो यह स्थान बन्दरों का ही हो चुका। इसे अब इन्हीं के लिए छोड़ देना होगा। बादशाह ने तुलसीदासजी की बात मान ली। प्रियदास ने भक्तमाल की टीका में इस घटना का उल्लेख किया है और पदप्रसंग माला में भी इसकी चर्चा है। इस बादशाह का नाम जहाँगीर बतलाया गया है। इसी प्रकार की अन्य बहुत-सी घटनाओं कासम्बन्ध भी गोस्वामीजी के जीवन से जोड़ा जाता है। इन घटनाओं में कोई सचाई हो या नहीं परन्तु इतना सत्य अवश्य है कि गोस्वामीजी अपने काल में एक प्रसिद्ध धर्मनिष्ठ महात्मा समझे जाते थे।

वृद्धावस्था : कवि ने अपनी कविता में वृद्धावस्था का भी वर्णन किया है। वास्तव में कवि या लेखक अपने जीवन पर घटने वाली किसी भी बात को अपने साहित्य में किसी न किसी रूप में न दे, यह असम्भव सी ही बात है। कहीं-न-कहीं, किसी-न-किसी रूप में, वह घटना या बात आ ही जाती है। गोस्वामी जी लिखते हैं:

१. चेरो राम राय को सुजस सुनि तेरो हर,
पाई तर आइ रह्यौ सुरसरि तीर हौं ॥[1]

यह वृद्धकाल की बात है क्योंकि काशी में मरने वाले को स्वर्ग की प्राप्ति होती है। इसीलिए हर का सुयश सुनकर गोस्वामीजी वृद्धकाल व्यतीत करने काशी पहुँच गये थे। परन्तु उनका विश्वास फिर भी राम में ही था और वही उनके इष्टदेव थे।

रोग वर्णन : कवि ने जीवन में आने वाली रोग-स्थितियों का भी चित्रण किया है :

१. रोग भयो भूत सो, कुसूत भयो तुलसी को,
भूतनाथ पाहि पद पङ्कज गहतु हौं ॥[2]
२. साहसी सरीर के दुलारे रघुबीर जी के
बाँह पीर महाबीर बेगि ही निवारिये ॥[3]
३. घेरि लियो रोगनि कुजोगनि कुलोगनि ज्यों,
वासर जलद घनघटा धुकि धाई है ॥[4]
४. तुलसी तनु-सर सुख-जलज भुज रुज गज बरजोर।
दलत दयानिधि देखिए, कपि केसरी किसोर ॥
भुज तरु-कोटर रोग-आदि बरबस कियो प्रवेस।
बिहँगराज-बाहन तुरत काढ़िय भिटइ कलेस ॥[5]

तत्कालीन परिस्थिति : कवि ने अपनी कविता में यत्र-तत्र देश दशा और तत्कालीन परिस्थितियों पर भी प्रकाश डाला है। ये सभी परिस्थितियाँ उनके जीवन में आईं और उनसे उनका जीवन किसी न किसी रूप में प्रभावित हुआ। तभी कवि ने उन्हें अपनी रचनाओं में स्थान दिया :

१. ऊँचे नीचे करम धरम अधरम करि,
पेट ही को पचत बेचत बेटा बेटकी।[6]
२. खेती न किसान को भिखारी को न भीख बलि
बनिज को बनिज न चाकर को चाकरी।

---

१. तुलसी ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड (कवितावली) पृष्ठ २४३
२. तुलसी ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड (कवितावली) पृष्ठ २२४
३. तुलसी ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड (कवितावली) पृष्ठ २५७
४. तुलसी ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड (कवितावली) पृष्ठ २६१-२६२
५. तुलसी ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड (दोहावली) पृष्ठ १२४
६. तुलसी ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड (कवितावली) पृष्ठ २२५

जीविका विहीन लोग सौदयमान सोच सब,
कहें एक एकन सौं 'कहाँ जाई का करी'।[1]
३ दारिदी दुखारी देखि, भूसुर भिखारी भीरु,
लोभ मोह काम क्रोध कलिमल घेरे है।[2]

इसी प्रकार कवि ने देश में फैली गरीबी और बेकारी का अनेकों जगह संकेत या है।

अन्तिम अवस्था : कवि ने, जैसा कि हम ऊपर कह आये हैं, वृद्धावस्था में ग और पीड़ा का चित्रण किया है। साथ ही काशी की महामारी का भी वर्णन है :

संकर-सहर सर नर नारि वारिचर,
विकल सकल महामारी माँजा भई है।[3]

परन्तु इन सब का सम्बन्ध कवि की अपने शरीर की बीमारियों से केवल नुमानिक ढंग से ही जोडा जा सकता है, कुछ निश्चयात्मक रूप से नही कहा सकता। कवि का जीवनान्त किस बीमारी मे या किस प्रकार हुआ, इस विषय में श्चयात्मक ढंग से कुछ नही कहा जा सकता। कहा जाता है कि तुलसीदासजी ने ने जीवन के अन्तिम स मय में क्षेमकरी चिडिया को देखकर यह सवैया कहा था :

कंकुम रंग सुअंग जितो मुखचन्द सों चन्दन होड़ परी है।
बोलत बोल समृद्ध चवै अवलोकत सोच विषाद हरी है॥
गौरी कि गंग विहंगिनि वेष कि मंजुल मूरति मोद भरी है।
पेषु सप्रेम पयान समै सब सोच बिमोचन छेमकरी है॥

तुलसीदासजी ने अपने मरते समय जो अन्तिम शब्द कहे वे इस प्रकार हैं :

राम नाम जस बरनि कै, भयो अहत अब मौन।
तुलसी के मुख दीजिये, अबही तुलसी-सौन॥

गोस्वामीजी की मृत्यु-तिथि के विषय मे एक दोहा बहुत ही प्रसिद्ध है। उसे ग यहाँ उद्धृत करते है।

संवत् सोरह सै असी, असी गंग के तीर।
सावन शुक्ला सप्तमी, तुलसी तजे सरीर॥

यही दोहा मूल गोसाई चरित्र मे कुछ दूसरे प्रकार से है :

संवत् सोलह सै असी, असी गंग के तीर।
सावन स्यामा तीज शनि, तुलसी तजे सरीर॥

१. तुलसी ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड (कवितावली) पृष्ठ २२५
२. तुलसी ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड (कवितावली) पृष्ठ २२६
३. तुलसी ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड (कवितावली) पृष्ठ २४७

गणना के आधार पर पहिली की अपेक्षा यह दूसरी तिथि ही अधिक ठीक निकलती है। गोस्वामीजी का देहावसान इस प्रकार श्रावण कृष्णा तृतीया संवत् १६८० को हुआ। परन्तु यह तिथि भी निश्चित् रूप से सत्य नहीं मानी जा सकती क्योंकि इसके निर्णय पर अभी तक विद्वानों में मतैक्य नहीं हो पाया है ।

गोस्वामीजी की प्रकृति : गोस्वामीजी के जीवन चरित् पर संक्षेप में हम ऊपर विचार कर चुके हैं। उसीके आधार पर अब हम उनकी प्रकृति के विषय में भी साधारण ज्ञान प्रस्तुत करने का प्रयास करते हैं। बालकाल से ही घर त्यागने पर गोस्वामी साधु सन्तों की संगति में रहने लगे थे। यह वैष्णव संत थे, इस पर भी अधिक प्रकाश डालने की आवश्यकता नहीं है। गोस्वामीजी का जीवन आडम्बर विहीन था और उनकी प्रकृति बहुत ही सरल थी। इस सरलता के आधार पर उन्होंने रामायण को भाषा में लाकर सरल ढंग से सरल जनता के सम्मुख प्रस्तुत किया और आचार लोगों की दृष्टि में स्वयं को एक कंटक बना लिया। भगवान की भक्ति के क्षेत्र में आपने जाति पाँति के बन्धनों को नहीं माना। तुलसीदासजी निरभिमानी व्यक्ति थे और उन्हें अपने जीवन की हर परिस्थिति पर सन्तोष रहता था। ह सभी मे प्रेम भाव प्रदर्शित करते थे, चाहे व ह उनकी मान्यताओं और िवारों में आस्था रखता हा या नहीं। उनके जीवन का एकमात्र उद्देश्य ही भगवान की चर्चा था और उसीमें वह हर समय लान रहते थे। उन्होंने लिखा भी है :

सूधे मन सूधे बचन, सूधी सब करतूति।
तुलसी सूधी सकल विधि, रघुबर प्रेम प्रसूति ॥

(दोहावली)

नम्रता उनके जीवन में कूट-कूटकर भरी थी। सरल जीवन लेकर ही यह कवि दास्य-भावना से इतना ऊपर उठ सका। कवि स्वयं भी कहता है :

१. संत सरल चित जगत हित जानि सुभाउ सनेहु।
बाल विनय सुनि करि कृपा, राम चरन रति देहु ॥[1]

२. भाषा भनति मोर मति भोरी। हँसिबे जोग हँसे नहिं खोरी ॥[2]

३. वंचक भगत कहाइ राम के। किंकर कंचन कोह काम के ॥[3]
तिन्ह में प्रथम रेख जग मोरी। धिग धरमध्वज धंधक धोरी ॥

४. कवि कोविद रघबर चरित मानस मंजु मराल।
बाल विनय सुनि सुरुचि लखि मोपर होहु कृपाल ॥

---

१. तुलसी ग्रन्थावली, पहला खण्ड (मानस) पृष्ठ ४
२. तुलसी ग्रन्थावली, पहला खण्ड (मानस) पृष्ठ ७
३. तुलसी ग्रन्थावली, पहला खण्ड (मानस) पृष्ठ ९

आत्म विश्वास : गोस्वामी तुलसीदास में जबरदस्त आत्मविश्वास था। दास को अपने भगवान् राम पर हर समय विश्वास था और उनकी भावना थी कि उनके लोकरंजक, लोकपालक और लोकरक्षक इष्टदेव हर समय उनके साथ रहते है। उनका रक्षा-कर सिर पर लेकर ही भक्त तुलसीदास लोक में विचरण करते है, फिर भला उन्हें भय किस बात का ? कवि कहता है :

१. **कौन की त्रास करै तुलसी जो राखि है राम तौ मारि है कोरे ॥**[1]

२. **राखि है राम कृपालु तहाँ, हनुमान से सेवक हैं जेहि केरे।**
नाक रसातल भूतल में रघुनायक एक सहायक मेरे ॥[2]

३. **तुलसी सरनाम गुलाम है राम को जाको रुचै सो कहै कछु ओऊ।**
माँगि कै खैबो मसीत को सोइबो लैबे को एक न दैबे को दोऊ ॥[3]

४. **जागै भोगी भोग ही, वियोगी रोगी सोग बस।**
सोवै सुख तुलसी भरोसे एक राम के ॥[4]

इस प्रकार राम के भरोसे तुलसी को किसी प्रकार की भी चिन्ता नही है और वह निश्चिन्त हो पैर फैलाकर सोता है।

सारांश

उक्त विवरण के आधार पर यह निश्चित होता है कि महाकवि तुलसीदासजी हुलसी माता के पुत्र थे। इनका जन्म किसी उच्च वर्ण में हुआ था। आत्म-ग्लानि से अपने कुल को कवि ने 'मगन कुल' ही कहा है। यह ब्राह्मण कुल हो सकता है। इनका बालकपन का नाम रामबोला था, जो बाद में तुलसीदास के रूप में परिणित हो गया। माता-पिता के प्यार तथा संरक्षण से वह बाल्यावस्था से ही वंचित हो गये थे। इसके कारण इनका बाल-जीवन भी माँगते-खाते ही कष्टमय परिस्थितियो में व्यतीत हुआ। रोटियो तक के लिए कभी-कभी इन्हें तरसना पड़ जाता था। द्वार-द्वार पर भिक्षा माँगकर यह जीवन-यापन करते रहे। भ्रमण करते हुए यह नरहरि गुरु के पास पहुँचे और उन्होने शूकर-क्षेत्र में उन्हें राम-कथा सुनाई। परन्तु इस समय यह बालक ही थे और गम्भीर बातों को समझना इनके लिए कठिन था।

बड़े होने पर इन्होने अपना विवाह किया। 'मेरे ब्याह न बरेखी' पक्ति के आधार पर कुछ विद्वान् यह भी मानते है कि इनका विवाह हुआ ही नही, परन्तु हमारा

---

१. तुलसी-ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड (कवितावली) पृष्ठ २१३
२. तुलसी-ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड (कवितावली) पृष्ठ २१३
३. तुलसी-ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड (कवितावली) पृष्ठ २२८
४. तुलसी-ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड (कवितावली) पृष्ठ २२६

मत इसके विपरीत है। इस पंक्ति का अर्थ हम यही लगाते है कि 'हमें किसी का विवाह इत्यादि नहीं करना है क्योंकि हमारे कोई सन्तान इत्यादि नही है और हम गृहस्थ से सम्बन्ध-विच्छेद कर चुके है।' वाह्य-साक्ष और जनश्रुति के आधार पर तुलसीदास जी का विवाह होना ही प्रमाणित होता है।

कवि ने अपने वैराग्य से पूर्व की कथा पर प्रकाश नही डाला। वैराग्य की दशा और पर्यटन का आपने अच्छा-खासा वर्णन किया है। शूकर-क्षेत्र से आपने राम-कथा सुनी और तभी से उसे अपने मन तथा हृदय मे स्थान देकर साहित्य की पृष्ठ-भूमि बनाया। यात्रा के दौरान में यह चित्रकूट, काशी, वारिपुर, दिगपुर, अयोध्या आदि स्थानों को गये।

गोस्वामीजी के जीवन का पूर्वार्ध जहाँ माँगते-खाते कष्ट में व्यतीत हुआ, वहाँ इनका उत्तरार्ध काफी सुख-चैन से कटा। जीवन के अन्तिम दिनों में इन्हें बाहु-पीर हुई और उसके शमन के लिए आपने शिव, पार्वती, राम और हनुमान की स्तुति की।

गोस्वामीजी ने अपनी समकालीन परिस्थितियों पर भी प्रकाश डाला है। लोग धर्म-विमुख होते जा रहे थे। देश में बेकारी थी। जीविका बड़ी ही कठिनाई से प्राप्त होती थी। किसान को खेती करना कठिन था और भिखारी को भीख नही मिलती थी। अनेकों पन्थ और पाखण्डों का जोर था। काशी में महामारी फैली थी, उसका भी कवि ने चित्रण किया है।

रामचरित मानस की रचना आपने संवत् १६३१ में की। संवत् १६४२ में आपने 'पार्वती-मंगल' की रचना की। शेष ग्रन्थों की रचना के समय के विषय में संकेत नही मिलता।

जीवन के अन्तिम काल में गोस्वामीजी का यश काफी दूर-दूर तक फैल चुका था। इनकी ख्याति काफी बढ़ चुकी थी। समकालीन राजे महाराजो और मुगल बादशाहों में भी इनका सम्मान होने लगा था।

गोस्वामीजी आत्माभिमानी, नम्र-स्वभाव के व्यक्ति थे। अपने लिए कवि ने कूर, काहली, दगाबाज, कूकर इत्यादि शब्दों का प्रयोग किया है। यह आत्मग्लानि कवि में अपने पूर्ववर्ती जीवन के कारण पैदा हुई मालूम देती है।

गोस्वामीजी की मृत्यु-तिथि अनिश्चित है। महाप्रयाण के समय आपने क्षेमकरी पक्षी को देखा था। जीवन के अंत समय में भी राम-नाम इनके मुख पर था। जो निश्चित तेथि आज इनकी मृत्यु के सम्बन्ध में मानी जाती है, वह श्रावण कृष्ण तृतीया संवत् १६८० है।

28 MAR 1967

संक्षिप्त

१. कवि का जन्म संवत् १५८९ है।

का भय नहीं था। अपनी फौज की ताकत से वे जनता पर मनमाना अत्याचार कर सकते थे। उनका जीवन उनके रनिवासों तक ही सीमित होता चला जा रहा था।

समाज पर प्रभाव

इस राजनैतिक परिस्थिति का समाज पर भी प्रभाव पड़ना शुरू हो गया था। 'यथा राजा तथा प्रजा' की कहावत पूर्ण रूप से चरितार्थ होती जा रही थी। हिन्दू जनता पतनोन्मुख थी। दास्य वृत्ति जनता में घर करती जा रही थी। स्वाभिमान का लोप और शासकों के रंग में अपने को रंगने की प्रणाली प्रतिलक्षित होने लगी थी।

"प्रत्येक सामन्त की मृत्यु पर उसकी सम्पत्ति हड़प लेने की (एसचीट सिस्टम) प्रथा के कारण न जाने कितने हिन्दू राज्यों का उन्मूलन हो रहा था। सरदार के मरते ही उसकी भूमि राजा की हो जाती थी और उसका फल यह होता था कि अनेकानेक परिवार अनाथ होते जाते थे। उन्हें भीख माँगने के अतिरिक्त और मार्ग न सूझता था। सरदार के जीवन-काल में भी भूमि-अपहरण-प्रणाली का समाज-घातक परिणाम होता था। सरदार लोग गुलछर्रे उड़ाते थे और नैतिक पतन के गर्त में गिरते जाते थे। वे सोचते थे कि जब मेरे परिवार को हमारे न रहने पर कुछ भी न मिलेगा तो क्यों न हम अपने जीवन-काल में ही उसे उड़ा डालें। परिणामतः इस प्रथा ने देश के कितने ही परिवारों की आर्थिक उन्नति एवं सामाजिक प्रतिष्ठा पर भारी कुठाराघात किया।"[१]

देश के कृषकों की दशा भी खराब थी। उनकी आवश्यकताओं की उपेक्षा करके लगान वसूल किया जाता था। कर्मचारी लोग अपनी लूट-खसोट अलहदा लगाये रहते थे। कई प्रकार के अबवाबों को देते-देते किसान लोग परेशान थे। दुर्भिक्ष इत्यादि की आफतें भी प्रजा पर आती रहती थी और सरकार की ओर से उसे दूर करने का कोई उपाय नहीं होता था। यातायात की कठिनाई के कारण उसका वैसे भी होना कठिन था। दुर्भिक्षों के साथ-साथ महामारी भी कभी-कभी फैल जाती थीं, जिनमें लोग तड़प-तड़प कर जान देते थे और उसको रोकने का कोई उपाय नही होता था। सन् १६१६ से सन् १६२४ तक जहाँगीर के शासन-काल में एक भयानक महामारी फैली, जिसका प्रकोप लाहौर, सरहिन्द, दिल्ली इत्यादि होता हुआ भारत के अन्य नगरों में भी पहुँचा। इस महामारी में अगणित प्राणियों को अपनी जानें गँवानी पड़ीं।

तीर्थ-स्थानों और देवालयों की स्थिति

इस काल में सिद्धों और ब्राह्मणों का पाखंड और जनता का धार्मिक अन्ध-विश्वास बहुत जोर पर था। धर्म के नाम पर अनाचार पराकाष्ठा को पहुँचा हुआ

१. सर यदुनाथ सरकार, 'मुगल एडमिनिस्ट्रेशन', पृष्ठ १६५।

था। शाहजहाँ के प्रारम्भिक शासन-काल में फ्रेंको बरनियर नामक यात्री भारत आया था। बरनियर ने आठ-नौ दिन जगन्नाथपुरी में रहकर रथ-यात्रा के मेले को देखा। उसका वर्णन करते हुए वह लिखता है कि वहाँ पर जनता की भीड़ लगभग डेढ़ लाख के करीब थी। इस अवसर पर एक विमान बनाया जाता था। उसे चौदह या सोलह पहियों के रथ पर अधिष्ठित करके उसमें अलकृत जगन्नाथजी की प्रतिमा को एक मन्दिर से दूसरे मंदिर तक ले जाया जाता था। इस रथ को आदमी ही खींचकर ले जाते थे।

इस भीड़ में जो लोग पिसकर मर जाते थे वे सीधे स्वर्ग प्राप्त करते थे, ऐसी जनता की धारणा थी। बल्कि कुछ अन्ध-विश्वासी लोग तो अपने आप आगे आकर रथ के पहियों के नीचे गिरकर मर जाते थे। ब्राह्मणों ने उस अन्ध-विश्वास को जनता में फैलाया हुआ था।

ब्राह्मणों का पाखंड और अनाचार पराकाष्ठा को पहुँचा हुआ था। ये लोग भोली जनता द्वारा धर्म के मर्मज्ञ होने के नाते आदर की दृष्टि से देखे जाते थे। इनकी काली करतूतों को समझना भोली जनता के लिए कठिन था। "इनके पाखंड के कई मार्ग थे; जैसे, ये ब्राह्मण किसी लावण्यवती युवती को चुन लेते और अन्ध-विश्वासियों के मन में यह विश्वास जमा देते कि वह रमणी जिस मन्दिर में जगन्नाथजी पधराये जाएँगे उसी में उनकी पत्नी बनेगी। रात्रि में जगन्नाथजी उसके पास अवश्य आएँगे। रमणी को आज्ञा देते कि जिस समय जगन्नाथजी आएँ, उनसे पूछना कि वर्ष किस प्रकार बीतेगा, कैसी धूमधाम रहेगी, कैसी प्रार्थनाएँ होंगी और उनकी अर्चना के लिए कितने दान की आवश्यकता पड़ेगी। रात्रि के दूसरे प्रहर में मन्दिर के किसी छोटे पक्ष-द्वार से इन्हीं ब्राह्मणों का सरदार प्रवेश करता और उसके द्वारा पूछे गये प्रश्नों का आवश्यक उत्तर देकर उसका पूर्ण विश्वास बनाये हुए चला जाता। साथ ही यह धूर्त ब्राह्मण उस सीधी-सादी स्त्री का सतीत्व भी अपहरण करता। दूसरे दिन वह रमणी भी जगन्नाथजी की पत्नी के रूप में उनकी प्रतिमा के साथ रथ में दूसरे मन्दिर की ओर ले जाई जाती थी। वहाँ ब्राह्मण लोग भीड़ के सामने चिल्लाकर पूछते कि जगन्नाथजी ने रात्रि में तुम से क्या-क्या बातें की ?"[१]

इस प्रकार की घटनाओं के अतिरिक्त रथ के सामने वेश्याओं का नृत्य होता था। यात्री लिखता है कि "उसने और भी बहुत-सी रमणियों को देखा, जो सामान्य विभाग में रखी गई थीं। वे किसी बाहरी आगन्तुक, हिन्दू मुसलमान या ईसाई यात्रियों के उपहार को उपेक्षणीय समझी जाती थीं। उनका विश्वास था कि वे देवल के पुजारी अथवा देवल के चारों ओर भस्म रमाकर बैठे हुए बड़े-बड़े जटाधारी सिद्धों

१. तुलसीदास और उनका युग, पृष्ठ ६–७।

को अर्पित है।[1]"

यह दशा थी देवालयों की और उनके अन्दर पलने वाले ब्राह्मण-वर्ग की। पाखण्डी योगियों की तो कुछ पूछो ही नही। वे लोग अपना अलग ही रंग जमाये भोली जनता को उल्लू बनाने में लगे थे। तमाम शरीर मे भस्म लगाकर बेधड़क नगे घूमते थे, या लम्बी-लम्बी जटाएँ बाँधे विचित्र मुद्रा मे आसीन नग्न काले कराल से खौफ-नाक बने किन्हीं पेड़ों के नीचे तालाबो के किनारे पडे रहते थे और अपने पास आने वाले गृहस्थों को ठगना इनका पेशा था।

वर्णाश्रम धर्म की स्थिति

वर्ण-व्यवस्था का पतन हो रहा था। मुसलमानो के आने मे पहिले बुद्ध और जैन धर्म का आघात हो चुका था। इस प्रभाव से टक्कर लेने के लिए सायण, मध्व, उव्वट, दुर्ग, आनन्दतीर्थ, भट्ट भास्कर इत्यादि अपने भाष्य लेकर सामने आये और वैदिक धर्म की गिरावट को सम्भालने का प्रयास किया। वेदों के भाष्यकारों के अतिरिक्त कुछ धर्म-सुधारकों ने स्मृतियों के भाष्य किये और उन पर निबन्ध लिखकर हिन्दू धर्म की रक्षा की। इन विद्वानों ने निष्प्राण शरीर में दुबारा प्राणों की प्रतिष्ठा की। प्राचीन सामाजिक नियमों का एक बार फिर से पुनरुद्धार किया। मेधा-तिथि, कुल्लूक भट्ट, विज्ञानेश्वर, हेमाद्रि, रघुनन्दन आदि ने बड़े परिश्रम के साथ हिन्दू धर्म-व्यवस्था को सम्भाला। इसी समय कुछ दर्शन-शास्त्र के आचार्यो ने भी जन्म लिया। इनमें जगत् गुरु शंकराचार्य का नाम विशेष उल्लेखनीय है। आपने एक बार फिर से भूली-भटकी जनता को उद्‌बोधित किया और इन्ही के प्रभाव से बुद्ध-धर्म का पतन हुआ। शंकराचार्य ने चार मठ स्थापित किये और उन्ही मठों मे अपने धर्म तथा अपनी मान्यताओ का प्रचार प्रारम्भ किया। षट्-दर्शन के सम्प्रदायो की फिर से स्थापना हुई और जनता को समझाने के लिए उनके अनेकों भाष्य हुए।

हिन्दू-धर्म के पुनरुत्थान में जहाँ एक ओर तत्वदृष्टा शकराचार्य के दर्शन का प्रभाव हुआ वहाँ दूसरी ओर भक्ति-सम्प्रदायों के आचार्यो का योग भी कुछ कम महत्त्वपूर्ण नही है। श्री रामानुजाचार्य, विष्णुस्वामी, वल्लभाचार्य, विठ्ठलनाथजी, हितहरिवंश इत्यादि ने हिन्दू-धर्म को सर्वनाश की ओर जाते हुए रोका। मुसलमानी शासन का जोर-जब्र सिर पर होने पर भी हिन्दू-धर्म की जड़ों को पानी देना इन्ही महानुभावों का काम था।

जब मुसलमान पूरी तरह से भारत में जम गये, तो दोनो धर्मो में सामंजस्य स्थापित करने वाली प्रवृत्ति ने जन्म लिया और ऐसे सुधारक सामने आये जिन्होंने

१. वही, पृष्ठ ३०६।

इस दिशा में प्रयास किया। दोनों धर्मों के मतभेदों को मिटाने की ओर इन विचारक-संतों और भक्तों का ध्यान गया और बहुत कुछ हद तक जनता की भावना उनकी विचार-धारा से प्रभावित भी हुई। धार्मिक रूढ़ियाँ उनके मार्ग में बाधाएँ बनकर आईं। इस दिशा में कबीर-पंथ और सूफी-पंथ उल्लेखनीय है।

मुगल शासकों का प्रभाव

मुगल-शासन-प्रणाली पूर्णरूपेण एक सैनिक शासन प्रणाली थी जिसका समाज की नैतिक, सामाजिक तथा आर्थिक उन्नति से बहुत कम सम्बन्ध था। जैसा कि ऊपर दिये गये विवरणों से पता चलता है, राज्य-सत्ता न बीमारियों को रोक सकती थी, न कर्मचारियों की घूसखोरी को रोक सकती थी, न कृषकों की दशा को सुधार सकती थी, न मंदिरों और तीर्थ-स्थानों में फैले व्यभिचारों को रोक सकती थी, बस उसका काम तो राजा-महाराजों को परास्त करना भर ही था। ऐसी दशा में शासन और जनता का पारस्परिक सम्पर्क कुछ भी नहीं था। यह शासन-प्रणाली अरब और फारस के बादशाहों के आदर्श को मानने वाली शासन-प्रणाली थी, पूर्ण रूप से सैनिक शासन-प्रणाली। यह एकतंत्रीय सत्ता थी, जिसका सूत्र व्यक्ति-विशेष के हाथों में रहता था।

इस प्रकार प्रजा से शासक का सम्बन्ध ना के बराबर ही था। शासक की इस उदासीनता के फलस्वरूप प्रजा में खुशहाली आ ही नहीं सकती थी। समाज के सामने जहांगीर और अकबर के रूप में विलासी सम्राट थे, जिनका प्रभाव सामंतों, सरदारों और छोटे कर्मचारियों पर क्रमशः पड़ता था।

देश की दशा और धर्माचार्य

देश की ऐसी स्थिति में समाज गिर रहा था, धर्म के क्षेत्रों में पाखंड फैल रहा था, राजकीय सत्ता अपना सम्बन्ध समाज की गिरावट से और अनीति से नहीं रखती थी। इन परिस्थितियों में समाज गिर रहा था। लोगों का आचरण बराबर पतनोन्मुख था। देश में निराशा का साम्राज्य छाया हुआ था। धर्म की श्रंखलाएँ ढीली पड़ती जा रही थी। धर्म के नाम पर पाखंड का बोलबाला था। जनता की भाषा संस्कृत न होने से टूटे-फूटे श्लोकों को रटकर पाखंडी ब्राह्मण जनता में खूब लूटमार मचाये रहते थे।

इस समय तक आते-आते समाज में उच्च और सामान्य वर्गो की व्यवस्था हो चुकी थी। इनमें पारस्परिक भेद पैदा हो चुका था और उसमें कटुता भी आने लगी थी। उच्च वर्ग के लोगों ने निम्न वर्ग के लोगों को मानवीय अधिकारों से भी वंचित कर देना प्रारम्भ कर दिया था। इन उच्च और सामान्य वर्गो में ईश्वर के

मूर्त्त और अमूर्त्त रूप को लेकर अनेकों प्रकार के बखेड़े खड़े हो गये थे। आस्तिक और नास्तिक स्वरूप को लेकर भी सामान्य जनता में कई प्रकार की विचार धाराएँ पैदा हो चुकी थीं।

यहाँ तक समझ लेना चाहिए कि ईसा की छटी शताब्दी से लेकर ग्यारहवीं शताब्दी तक भारत की जनता विचार-धारा के विचार से एक प्रकार पूर्ण रूप से नास्तिकों के हाथों में जा चुकी थी। बौद्ध-धर्म के प्रचार से सहजयान, ब्रजयान, निरंजन-पंथ-धारी इत्यादि धाराओं का वेग देश में बढ़ रहा था। इस वेग को रोकने और एक बार फिर से भारत में ब्राह्मण-धर्म का पुनरुद्धार करने का कार्य जगत्-गुरु शंकराचार्य ने किया, परन्तु शंकराचार्य द्वारा प्रवाहित धारा पूर्ण रूप से आचार्यो की धारा मात्र थी और उसका किसी भी प्रकार का प्रभाव सामान्य वर्गो पर नहीं हुआ। उच्चवर्गो पर उसका प्रभाव हुआ और जहाँ तक विद्वानों में सैद्धान्तिक आधार का प्रश्न था, उन्होंने बौद्ध-धर्म का खोखलापन उन पर पूर्ण रूप से जाहिर कर दिया।

शंकराचार्य के पश्चात् जो आचार्य आये और जिनके मतों का प्रभाव उच्च तथा सामान्य वर्गो पर समान रूप से हुआ, उनके मत शंकराचार्य के मत के समर्थन में न होकर प्रतिक्रिया मात्र थे। इन सभी आचार्यो के दार्शनिक वादों में मतभेद था, परन्तु सभी ने साधना के क्षेत्र में भक्ति को प्रधानता दी। रामानुजाचार्य ने साधना में ज्ञान को प्रधानता दी।

बौद्ध-धर्म की विश्रंखल धाराओं के प्रति यवनों के भारत में बढ़ने वाले प्रभाव के फलस्वरूप बहुत बड़ी प्रतिक्रिया देखने को मिलती है। इसका प्रभाव जनता तथा विचारकों, दोनों पर समान रूप से दिखलाई देता है। उत्तर भारत में नाथ-पंथ और दक्षिण-भारत में लिंगयात आदि धर्मों का उदय इसी प्रतिक्रिया के फलस्वरूप माना जाना चाहिए।

नीचे हम उक्त आचार्यो की विचार-धाराओं का संक्षेप में विवरण प्रस्तुत करते है :

शंकराचार्य : शंकराचार्य ने अद्वैत सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। माया-वाद का प्रवर्तक और आचार्य भी इन्हें ही माना जाता है। आपने जगत् को मिथ्या कहा है और ब्रह्म तथा जीव में कोई भी तात्विक भेद नहीं माना। आपने माया का आवरण और विक्षेप दो रूप में चित्रण किया है। आवरण माया की वह शक्ति है जो जीवात्मा की दृष्टि से ईश्वर को छुपा देती है। यह ब्रह्म को एक प्रकार से ढककर जीव की भौतिक दृष्टि से ओझल कर देती है। विक्षेप माया की वह शक्ति है जिसका सहारा लेकर ब्रह्म जगत् का निर्माण करता है। जहाँ तक जीवात्मा का

सम्बन्ध है उसे शंकराचार्य ने नित्य माना है। ब्रह्म से जीवात्मा का सर्वदा एक्य रहता है। आत्मा चैतन्यस्वरूप है। जीव शरीर का अध्यक्ष है और कर्म-फल के अनुसार शरीर में प्रवेश करता है, तथा उसका त्याग करता है। जीव की दो प्रकार की प्रवृत्ति होती है, अंर्तमुखी तथा बहिर्मुखी। जब जीव अंतर्मुखी प्रवृत्तियों के आधीन कार्य करता है तो उसका झुकाव ब्रह्म की ओर होता है और जब वह बहिर्मुखी प्रवृत्तियो के आधीन आचरण करने लगता है तो उसपर आवरण अर्थात् माया का प्रभाव बढ़ने लगता है और वह ब्रह्म से विमुख होकर दुनियाँ में फँसने लगता है। शंकराचार्य ने ब्रह्म-प्राप्ति के साधनों में कर्म, भक्ति और ज्ञान के क्षेत्र मे ज्ञान को प्रधानता दी है।

रामानुजाचार्य जीवन : रामानुजाचार्य का जन्म सं० १०७४ मे श्रीपरमबट्टूर मे हुआ था। मद्रास से २६ मील की दूरी पर पश्चिम की ओर [illegible] है। इन्हे शेष का अवतार माना जाता है। कंजीवरम में शंकरमतानुयायी श्री यादवप्रकाश को आपने अपना गुरु बनाया और उन्हीं से शिक्षा प्राप्त की, परन्तु अन्त में यह उनके मतानुयायी न बन सके। इनकी सहमति उनके सिद्धान्तों में न हुई। यामुनाचार्य के पश्चात् अपने सम्प्रदाय के यह आचार्य हुए। इनके तीन प्रसिद्ध ग्रन्थ वेदार्थ-संग्रह, श्री-भाष्य और गीता-भाष्य है। इन्होंने दो बार भारत की यात्राएँ कीं। अपने जीवन के अंतिम दिन आपने श्री रंगम (त्रिचनापल्ली) में बिताए। इनकी मृत्यु सं० ११९४ में हुई।

सिद्धान्त : रामानुजाचार्य की मान्यता श्रुति-प्रमाण में अवश्य है, परन्तु दर्शन के क्षेत्र में इनका शंकराचार्य से मतभेद है। यह चित, अचित और ईश्वर अर्थात्—जीव, प्रकृति और ब्रह्म तीनो को अनादि मानते है। आपके मतानुसार ईश्वर सर्वान्तरयामी है, परन्तु उसके साथ-ही-साथ जीव तथा प्रकृति भीनाशवान नहीं है, ये नित्य और स्वतंत्र है। यह अवश्य है कि स्वतंत्र होने पर भी ये ईश्वराधीन है। कर्म करने के लिए जीव स्वतंत्र है, परन्तु अपने कर्मो का फल भोगने के लिए स्वतत्र नही। आपके मतानुसार उपनिषद-प्रतिपाद्य ब्रह्म सगुण ब्रह्म ही है। जहाँ ईश्वर चिद्-चिद् के सम्बन्ध का प्रश्न है, वहाँ श्री-भाष्य[1] में चिद्-चिद् को विशेषण और ईश्वर को विशेष्य माना है। यही कारण है कि रामानुजाचार्य के मत का नामकरण भी विशिष्ठाद्वैत के रूप में प्रतिपादित तथा प्रतिष्ठित हुआ। इनके मतानुसार ईश्वर स्वेच्छा से जगत् का उत्पादन करता है। प्रलय के समय जीव और प्रकृति सूक्ष्म रूप धारण करके परब्रह्म में विलीन हो जाते है। इस प्रकार सूक्ष्म रूप को 'कार्यावस्थ' ब्रह्म कहते है। परिणामवादी विशिष्ठाद्वैत में ही कार्य-

१. 'श्री-भाष्य'—६।१।३

कारण का भेद मिलता है। रामानुजाचार्य जीव को अनन्त और अनुरूप मानते है। जीव को उन्होंने ब्रह्म से प्रथक नही माना वरन् प्राथक्य को गुणों के कारण माना है।

शंकराचार्य के ही समान रामानुजाचार्य ने भी मनुष्य का मुख्य लक्ष्य मुक्ति-प्राप्ति माना है, परन्तु मुक्ति प्राप्त करने के साधनों मे जहाँ शकराचार्य ने ज्ञान को प्रधानता दी है वहाँ रामानुजाचार्य ने भक्ति को अपनाया है। कबीर-कालीन सत तथा महात्माओं की धार्मिक विचार-धारा को जितना रामानुजाचार्य की भक्ति तथा प्रपत्ति प्रभावित कर सकी, उतना प्रभाव शंकराचार्य की ज्ञानाश्रयी धारा का नहीं हुआ। कबीरदासजी ज्ञान-मार्गी होने पर भी भक्ति-भावना से प्रभावित हुए बिना न रह सके।

मध्वाचार्य : मध्वाचार्य का जन्म संवत् १३१४ (सन् १२४७) मे मंगलौर से ६० मील उत्तर की ओर उदीपी मे हुआ था। यह द्वैतवाद के प्रतिपादक थे। उन्होंने अपने सिद्धान्त अधिकतर भागवत-पुराण से लिए थे। यह वायु के अवतार माने जाते है।

सिद्धान्त : आपने द्वैतवाद के आधार पर ब्रह्म-सम्प्रदाय की नीव डाली और उस सम्प्रदाय का आरम्भ आपकी ही विचारधारा से हुआ। विष्णु को आप साक्षात् ब्रह्म मानते थे। अनन्त गुणों का भंडार आपने विष्णु को ही कहा है। विष्णु में सजातीय और विजातीय सभी गुण विद्यमान है। वह संसार के जीवो से विलक्षण है और नाना रूप धारण करता रहता है। लक्ष्मी परमात्मा की शक्ति है, उसके आधीन है, परन्तु उससे सर्वथा भिन्न है। वह जीव को सासारिक मानते है और मुक्ति प्राप्त करना जीव का परम लक्ष्य है। मुक्त होने पर जीव ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है। रामानुजाचार्य के ही समान यह भी भक्ति को ही ब्रह्म-प्राप्ति का मुख्य साधन मानते है। मध्यकालीन आध्यात्मिक विचारधारा पर आपका काफ़ी प्रभाव पड़ा। कृष्ण-साहित्य को इस विचार-धारा ने प्रभावित किया, परन्तु इसमें राधा को वह स्थान प्राप्त नहीं था जो उसे बाद में जाकर हुआ। मध्वाचार्य के दो प्रधान ग्रन्थ वेदान्त-सूत्र पर भाष्य और अनुभाष्य है।

विष्णु स्वामी : विष्णु स्वामी के जीवन के विषय में अधिक सामग्री उपलब्ध नहीं है। संभवतः यह भी दक्षिण के ही निवासी थे। महाराष्ट्र-भक्त ज्ञानेश्वरी के रचयिता ज्ञानेश्वर महाराज से आप तीन वर्ष आयु में बड़े थे[1]। और ज्ञानेश्वर महाराज का आविर्भाव-काल सन् १३२० के लगभग माना जाता है।[2] इस प्रकार विष्णुस्वामी

१. Out-line of the Religious Literature of India--J.N. Farkhar–Page 235.

२. वही, पृष्ठ २३४।

का समय भी सन् १३२० के लगभग ही ठहरता है। यह समय लगभग संवत् १३७७ के आसपास का था। कहा जाता है कि यह ज्ञानेश्वर महाराज के गुरू थे, परन्तु इसका कोई पुष्ट-प्रमाण उपलब्ध नहीं है।

सिद्धान्त : विष्णुस्वामी मध्वाचार्य के ही मतावलम्बी थे। आपने अद्वैतवाद से शंकर के मायावाद को पृथक करने का प्रयास किया है। विशेष रूप से आपने राधा और कृष्ण की ही भक्ति को महत्त्व दिया है। विष्णुस्वामी का प्रभाव विद्यापति तथा चण्डीदास की कविता पर स्पष्ट रूप से पड़ा। इन्होने गीता, वेदान्त-सूत्र और भागवत-पुराण पर भाष्य लिखे। आपने सर्वप्रथम कृष्ण के साथ राधा की स्थापना की।

निम्बार्काचार्य : निम्बार्काचार्य का जन्म बारहवीं शताब्दी में हुआ। यह तेलगू प्रदेश से आकर वृन्दावन में बस गए थे। यह सूर्य के अवतार माने जाते हैं। जयदेव, गीत गोविंद के रचयिता, इनके शिष्य थे। कहा जाता है कि इन्होने सूर्य की गति को रोककर, उसे आकाश से हटाकर, एक नीम के वृक्ष के पीछे कुछ समय तक के लिए छिपा दिया था। यह उन्होंने इसलिए किया था कि सूर्यास्त से पूर्व उन्हें किसी संत को भोजन कराना था। निम्बार्क सम्प्रदायी जैनियों की ही भांति सूर्यास्त के पश्चात् भोजन नही करते। वह राधा-कृष्ण के उपासक और अद्वैत के प्रवर्त्तक हैं। रामानुजाचार्य का आप पर विशेष प्रभाव था।

सिद्धान्त : निम्बार्काचार्य ने द्वैताद्वैत मत का प्रतिपादन किया है। ब्रह्म के द्वैत और अद्वैत दोनों ही रूपों को आपने माना है। जीव को आपने कर्तव्य के क्षेत्र में मुक्त और भोग के क्षेत्र में परतंत्र माना है। जीव नियम्य है और ईश्वर नियन्ता। जीव ईश्वर का अश होने पर भी बहुत प्रकार का है। आपने अचित के प्राकृत, अप्राकृत और काल तीन रूप माने है। निम्बार्क-मत में ईश्वर के सगुण रूप का ही प्रतिपादन किया गया है। आपके विचार से जीवात्मा सांसारिक क्लेशों से केवल भक्ति-द्वारा ही मुक्ति प्राप्त कर सकता है। प्रपत्ति-मूलक-भक्ति के द्वारा ही जीव को भगवानानुग्रह प्राप्त हो सकता है।

इस प्रकार हमने देखा कि देश में द्वैत और अद्वैत को लेकर दर्शन और धर्म के क्षेत्र में काफी एक उलझन पैदा हो रही थीं। आचार्यो की दिमागी क़लाबाजियाँ चल रही थी और उनके फलस्वरूप बहुत सी विचार-धाराएँ और बहुत से मत मतान्तरों का जन्म हो रहा था। हिन्दू-धर्म का एक नया ही रूप होता जा रहा था, जिसमें वैदिक समय से काफ़ी परिवर्त दिखलाई देने लगा था। यह वह समय था जब देश के वातावरण में ज्ञान और भक्ति का समन्वय होना चाहता था। यह देश की मुख्य विचारधारा थी जिससे जनता प्रभावित हो रही थी और इसी का प्रभाव साहित्य पर भी पड़ रहा था। भक्ति-काल का सम्पूर्ण साहित्य भक्ति और ज्ञान के

इसी सैद्धान्तिक वातावरण से अनुप्राणित हुआ है। विचार में भक्ति और भक्ति में विचार का अभिन्न सम्मिश्रण इस काल में देखने को मिलता है। निर्गुण में सगुण और सगुण में निर्गुण विचारों का सम्मिश्रण इसी काल मे आकर हुआ। ब्रह्म के सूक्ष्म रूप को परखने मे जब आचार्यो ने देखा कि जनता को कठिनाई होती है तो उसका स्थूल मूर्त रूप उसके सामने प्रस्तुत कर दिया।

उक्त चार सिद्धान्तों के आधार पर भारत में चार सम्प्रदायों की स्थापना हुई :

१. **श्री-सम्प्रदाय :** रामानन्दी वैष्णव इस सम्प्रदाय के अनुयायी बने।

२. **ब्रह्म-सम्प्रदाय :** इस सम्प्रदाय के अनुयायी माधव वैष्णव थे।

३. **रुद्र-सम्प्रदाय :** इस सम्प्रदाय के अनुयायी विष्णुस्वामी मत के थे।

४. **सनकादि सम्प्रदाय :** इस सम्प्रदायालम्बी निम्बार्क मत के थे।

रामानन्द : रामानुजाचार्य के श्री-सम्प्रदाय को लोकप्रिय बनाने और व्यापक रूप देने का श्रेय रामानन्द जी को ही पहुँचता है। रामानन्द जी के पिता का नाम पुष्पसदन था और माता का नाम सुशीला। इन्होंने अपना विद्याभ्यास काशी के स्वामी राघवानन्द के आश्रय में किया। इनकी प्रतिभा से प्रभावित होकर श्रीराघवानन्द ने अपना आचार्य-पद इन्हें प्रदान कर दिया। रामानन्दजी ने सारे भारत का पर्यटन किया।

सिद्धान्त : रामानन्दजी ने भक्ति क क्षेत्र में विष्णु या नारायण के स्थान पर अवतार राम को प्रतिपादित किया। आपने रामानुजाचार्य के कर्म-काण्ड (समुच्चय) की उपेक्षा की और एकमात्र भक्ति को अपनाया। आपने भक्ति को ही सर्वश्रेष्ठता दी। अपने मत को लोकप्रिय और व्यापक बनाने के लिए आपने दो बातों की तबदीली की,-- एक तो धर्म-भाषा संस्कृत से बदल कर जनता की भाषा करदी और दूसरे भक्ति के क्षेत्र मे जाति और वर्ण के बन्धनों को खोल दिया। इससे शूद्रों को भी भक्ति-द्वारा भगवान् के पास तक पहुँचने का अवसर मिल गया। यह अपने युग की एक महान् क्रान्ति थी। रामानन्द जी ने राम और सीता की मर्यादापूर्ण भक्ति की। उत्तर-भारत में वष्णव-धर्म की नीव जमाने का श्रेय एक प्रकार से रामानन्दजी को ही जाता है। विष्णु अथवा नारायण के अवतार राम को जनता-जनार्दन ने अपनाया और अपने मन-मंदिर के देवता-स्वरूप स्थापित कर लिया। अवतारों के रूप में विष्णु की प्रतिष्ठा दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगी। विष्णु अथवा नरायण का महत्त्व अवतारों के रूप में प्रकट हुआ। विष्णु के अवतारों ने विश्व में आकर 'धर्म की ग्लानि' को दूर किया। अवतारों की संख्या दस है, परन्तु भागवत्-पुराण में बाईस अवतारों का वर्णन है। यों तो सभी अवतारों का महत्त्व

काफ़ी है पर सप्तम और अष्टम अवतार राम और कृष्ण का महत्त्व सबसे अधिक है

चैतन्य : चैतन्य का नाम विश्वम्भर मिश्र था। इनका जन्म नदिया (बंगाल) मे संवत् १५४२ मे हुआ था। न्याय और व्याकरण में प्रारम्भ से इनकी प्रतिभा अधिक विकसित होने लगी थी। २२ वर्ष की आयु में यह ब्रह्म-सम्प्रदाय में दीक्षित हो गए, किन्तु इन्हें द्वैतवाद अधिक पसंद नही आया। रुद्र और सनकादि सम्प्रदायों का भी इन पर प्रभाव पड़ा।

सिद्धान्त : चैतन्य ने अपनी धार्मिक मान्यताओं में राधा को प्रमुख स्थान दिया। उनकी आराधना मे जयदेव, चण्डीदास तथा विद्यापति के पदों को गाया गया। इन्होंने अपने सम्प्रदाय मे संकीर्तन को भी स्थान दिया और उनमें गान और नृत्य का बाहुल्य रहा। जहाँ तक धार्मिक दार्शनिकों की मान्यता का प्रश्न है वहाँ तक आपने मध्व के द्वैतवाद को ही अपनाय। इनकी भक्ति का मूलाधरा भागवत्-पुराण ही है। जगन्नाथपुरी जाकर आपने अपने सिद्धान्तों को लोकप्रिय बनाया। जगन्नाथपुरी में यह ही संवत् १५९० मे जगन्नाथजी के अन्दर लीन हो गए।

चैतन्य ने भक्ति के पाँच प्रकार माने है :

१.–शान्ति-ब्रह्म पर मनन।

२. दास्य–ब्रह्म की सेवा में लीन।

३. सख्य–ब्रह्म को सखा के रूप में ग्रहण करना। मैत्रीपूर्ण व्यवहार।

४. वात्सल्य–स्नेहपूर्ण व्यावहार में भगवान् को बच्चे के रूप में देखना।

५. माधुर्य–दाम्पत्य रूप में।

वल्लभाचार्य : वल्लभाचार्य तैलिगू-प्रदेश के विष्णुस्वामी के मतावलम्बी थे। संवत् १५३६ में इनका जन्म हुआ। यह चैतन्य महाप्रभु के ही समकालीन थे। यह सस्कृत के प्रकांड पंडित थे और छोटी सी ही अवस्था में इन्होंने कई पंडितों को परास्त कर दिया था। विजयनगर के कृष्णदेव की सभा में इन्हें महाप्रभु घोषित किया गया था।

सिद्धान्त : वल्लभाचार्य ने अपने को कहा है कि वह अग्नि के अवतार हैं। यद्यपि इन्होंने विष्णुस्वामी के सिद्धान्तों में मान्यता रखी तथापि चैतन्य की भाँति इनपर निम्बार्काचार्य का भी प्रभाव था। आपने कृष्ण को पूर्ण ब्रह्म माना। राधा को उनकी स्त्री कहा तथा कृष्ण के क्रीड़ा-स्थल को वैकुण्ठ। यह शुद्धाद्वैती दर्शन के प्रतिपादक थे। आपने शंकर के अद्वैत को शुद्ध कर दिया और उसे माया-मुक्त कर दिया। माया के लिए वहाँ कोई स्थान नहीं। शुद्धाद्वैत में माया के लिए विशेष प्रकार का विधान है। आपने भक्ति को ज्ञान से श्रेष्ट माना है। ज्ञान से ब्रह्म की अनुभूति नहीं होती, केवल उसे जाना जा सकता है। ब्रह्म की प्राप्ति का साधन इस

प्रकार आपने भक्ति को ही माना है, ज्ञान को नही ।

वल्लभाचार्य ने ब्रह्म को सत्, चित् आनन्दमय माना है । ब्रह्म अपने तीन रूपों मे प्रकट होता है । सत्, गुण के आविर्भाव और चित तथा आनंद के तिरोभाव से वह प्रकृति-रूप में प्रकट हुआ तथा सत् और चित के आविर्भाव तथा आनंद के तिरोभाव से वह जीव बनता है । सत्, चित और आनद के रूप में ब्रह्म सर्वव्यापक है, हर जगह मौजूद है । प्रकृति और जीव का ब्रह्म से उसी प्रकार प्राकट्य होता है जिस प्रकार अग्नि से चिंगारियाँ निकलती है । भक्ति, जिससे कृष्ण (ब्रह्म) की अनुभूति होती है उसे आपने कृष्ण के अनुग्रहस्वरूप माना है । इसी अनुग्रह का नाम वल्लभाचार्य ने पुष्टि रखा । इसी आधार पर आपके सम्प्रदाय का नाम पुष्टि-मार्ग पड़ा । पुष्टि के चार प्रकार हैं ।

१. प्रवाह-पुष्टि : संसार में रहते हुए भी एक प्रवाह के समान कृष्ण-भक्ति हर समय हृदय में चलती रहे ।

२. मर्यादा-पुष्टि : संसार के सुख से विरक्त होकर कृष्ण का गुणगान ही जीवन का लक्ष्य बनाया जाये । इससे मर्यादापूर्ण भक्ति का विकास होगा ।

३. पुष्टि-पुष्टि : श्रीकृष्ण का अनुग्रह प्राप्त होने पर भी कृष्ण भगवान् की साधना निरन्तर बढ़ती जाना ।

४. शुद्ध-पुष्टि : केवल प्रेम और अनुराग के सहारे कृष्ण का अनुग्रह प्राप्त करना और फिर हृदय में उसकी अनुभूति होना । इस अनुभूति के फलस्वरूप हृदय को कृष्ण का स्थान बना लेना ।

वल्लभाचार्य पुष्टि-सिद्धान्त के अनुसार जीव की सार्थकता उसी में मानते है कि वह राधा-कृष्ण के साथ गोलोक में निवास पा जाता है ।

वैष्णव विचार-धारा का संक्षेप मे डा० रामकुमार वर्मा इस प्रकार उल्लेख करते है, "वैष्णव-धर्म के प्रधान चार आचार्यो के सिद्धान्तो पर विचार करने से ज्ञात होता है कि रामानुजाचार्य ने केवल विष्णु या नारायण की भक्ति की और ज्ञान पर ही जोर दिया है, उनके अनुयायी रामानन्द ने विष्णु और नारायण का रूपान्तर कर राम-भक्ति का प्रचार किया । शेष तीन आचार्य निम्बार्क, मध्व और विष्णु स्वामी ने विष्णु के रूप में श्रीकृष्ण की ही भक्ति का प्रचार किया । रामानुज की भक्ति एवं अन्य तीन आचार्यो की भक्ति में भी कुछ अन्तर है । रामानुज की भक्ति श्वेताश्वतर उपनिषद (ईसा की चौथी शताब्दी पूर्व) से ली गई जान पड़ती है । गीता के बाद पुराणों, तंत्रों और बारहवीं शताब्दी में शांडिल्य के भक्ति-सूत्र में भक्ति का शास्त्रीय विवेचन मिलता है । इस भक्ति में चेतन और ज्ञान का विशेष स्थान है । संसार से उद्धार पाने के लिए इसकी विशेष आवश्यकता है ।"

उपासना के सगुण और निर्गुण रूपों को लेकर देश में भक्ति की धारा का जो प्रसार हुआ उसमें बहुत से संतों ने जन्म लिया और जनता को प्रभावित किया। इनमें संत नामदेव, जयदेव और गोरखनाथ के नाम उल्लेखनीय है। इनके अतिरिक्त भक्ति से मिलती-जुलती इस काल में सूफी विचार-धारा भी देश की जनता में प्रवाहित हो रही थी।

संत नामदेव : संत नामदेव महाराष्ट्र के संत थे। आपके गुरु का नाम विसोबा खेचर था। हिन्दी में आपके लिखे हुए लगभग २१० पद मिलते है। गुरु ग्रन्थ साहब में इनके ये पद सुरक्षित हैं। यह पहिले सगुणोपादक थे और बाद में निर्गुणोपासक हो गये। इनका प्रभाव कबीर पर पड़ा। भक्ति के क्षेत्र में आपने दास्य-भावना का प्रतिपादन किया है।

जयदेव : महाकवि जयदेव की भक्तिमय कविता ने जनता को प्रभावित किया है और जनता को ही नहीं उनकी शैली ने विद्यापति और सूर तक पर अपना असर डाला है। गोस्वामी तुलसीदास पर इनका कोई विशेष प्रभाव नहीं है।

गोरखनाथ : गुरु गोरखनाथ नाथ-पंथ के प्रधान आचार्य हुए है। कबीर की ज्ञान-मार्गीय धारा पर और उनके साहित्य पर इनकी अमिट छाप है। नाथ पंथ पर पातञ्जली के योग-सिद्धान्तों का प्रभाव था। गोस्वामी तुलसीदास और उनका साहित्य इस विचार-धारा से प्रभावित नही हुआ।

सूफी सम्प्रदाय : तुलसी-कालीन धार्मिक विचार-धाराओ तथा प्रणालियों में ऊपर हमने हिन्दू-जनता के बीच फैली हुई धार्मिक-प्रवृत्तियो का उल्लेख किया। इस समय तक हिन्दुस्तान में मुसलमान भी काफी संख्या में फैल चुके थे और उनकी धार्मिक प्रवृत्तियाँ भी भारत के धार्मिक वातावरण को प्रभावित करने लगी थी। मुसलमानी धर्म की सूफी विचार-धारा इस समय काफी जोर पकड़ रही थी। इसका प्रभाव जहाँ धर्म के क्षेत्र में होता था वहाँ साहित्य के क्षेत्र में भी इसने लेखकों को प्रभावित किया। भक्ति-काल में क्योकि साहित्य का भी प्रधान विषय भक्ति ही रहा है इसलिए साहित्य में भक्ति-परम्परा की अभिव्यक्ति ही सामने आती है। सूफी कवि मलिक मुहम्मद जायसी का महाकाव्य पद्मावत इस दिशा मे उल्लेखनीय ग्रन्थ है।

ईसा की तेरहवी शताब्दी में रहस्यवादी कवि जलालुद्दीन रूमी का प्रभाव फारस के मुसलमानों पर पड़ा। वहाँ सूफी-धर्म का प्रचार हुआ और उसका असर भारत के मुसलमानों पर भी हुआ। सूफी-सम्प्रदाय का प्रसार चिश्ती और सुहरावर्दी ने विशेष रूप से किया। भारत में इसका प्रचार ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती (११४२-१२३६) ने किया। सुहरावर्दी-सम्प्रदाय का प्रसार भारत में बहाउद्दीन जकारिया

अध्याय ४

तुलसी की रचनाओं में साहित्यिक अभिव्यक्ति

किसी कवि की रचनाओं में साहित्यक अभिव्यक्ति की खोज के लिए जिन तत्वों को आधार मानकर चलना होता है वे पाश्चात्य विद्वानो ने निम्नलिखित चार माने हैं :

१. बौद्धिकता ।

२. भावनात्मकता ।

३. कला ।

४ शैली ।

कोई-कोई कलाकार इन चारो का सामंजस्य करके अपने साहित्य का सृजन करता है और कोई किसी विशेष तत्व को प्रधानता देकर अपनी रचनाओं को उसी प्रधानता वाले तत्व की ओर खीचकर ले जाता है और उसमे उसी की विशेषता हो जाती है। उदाहरणार्थ हमे कबीर के काव्य मे बौद्धिकता का प्राधान्य मिलता है मीरा, रसखान और सूर तथा विद्यपति म भावनात्मकता के उद्रेक ने प्रधानता पाई है, बिहारी और केशव मे कलात्मक चमत्कार प्रमुख हो उठा है और वही उनकी शैली भी बना है। शैली पर उक्त तीनो ही प्रकार के तत्वो का प्रभाव पड़ता है और उन्ही के अनुरूप भाषा और भाषा का प्रवाह तथा निखार भी कवि या लेखक प्रस्तुत करता है। जो कलाकार उक्त चारों गुणो का सामजस्य करते हुए अपने काव्य का सृजन करते है उनकी रचनाएँ प्रथम श्रेणी में रखी जाती है और उनके सभी पहलू समान रूप से मजबूत बने रहते है और जो कलाकार किसी विशेष दिशा की प्रधानता लेकर चलते है उनकी वही विशेषता बन जाती है, परन्तु इससे काव्य मे एक प्रधान गुण के साथ-साथ कुछ कमी भी रहती है, इसे नही भुलाया जा सकता।

भारतीय आचार्यों ने भी काव्य के गुण निर्धारित किये है। ध्वनि, अलंकार और रस की कसौटी पर काव्य को कसने का प्रयास हमारे आचार्यो ने किया है। इन आचार्यों में भी अपने-अपने विचारों की ओर को खींचा-तानी रही है। कुछ ने ध्वनि को काव्य में प्रधानता दी है तो कुछ ने अलंकार को, परन्तु अधिकांश ने काव्य में रस

को ही प्रधानता दी है। काव्य किसी भी विद्वान् की वह कृति है जो पाठक के जीवन में उत्साह, आनन्द, प्रेरणा, स्फूर्ति और ताजगी लाये। इसके लिए उस रचना में सुन्दर विचार; भावना-युक्त समस्या और कथा का गठन; सरल, मधुर और सगुण भाषा; सुन्दर अलंकारो की योजना,—इन सभी तत्वो की आवश्यकता है और जो लेखक इन सभी दिशाओं का ध्यान रखकर आगे बढ़ेगा वही एक सफल कलाकार साहित्यक के पद को आभूषित कर सकता है। काव्य में मृदुल शब्दावली का प्रयोग सरल रचना की सृष्टि मे सहयोगी होता है। सुन्दर अलंकारो की योजना, भरमार नही, काव्य के चमत्कार और सौदर्य की वृद्धि मे सहायक होते है। कही-कही ये भावोत्कर्ष मे भी सहायक होते है। काव्य के उच्च कोटि मे आने के लिए उसके अन्दर भाषा और भाव तथा विचार तीनो का सामजस्य परम आवश्यक है। तीनो मे से एक के भी पछड़ जाने से अभाव स्पष्ट दिखलाई देने लगता है, और यही अभाव काव्य-गुणो के धरातल पर रचना को हलका भी बना देता है। काव्य-रचना मे पाडित्य-प्रदर्शन और भाषा पर अधिकारविहीनता, दोनो ही खलने लगते है। रचना का युक्ति पूर्ण होना परमावश्यक है। उचित गुणो के साथ विचार, भावना और कल्पना, का कलात्मक समन्वय काव्य को उच्च कोटि का काव्य घोषित करता है।

बुद्धि-तत्व

गोस्वामी तुलसीदास ने मर्यादापुरुषोत्तम राम को अपने काव्य का नायक बनाया है और जो काव्य किन्ही मर्यादाओ का पालन करता हुआ प्रस्फुटित होता है उसमे भावना और कल्पना की उड़ानो के लिए भी क्षेत्र मर्यादा के अन्दर रहकर ही मिल सकता है। न तो उसमें विद्यापति के श्रृंगार की ही सृष्टि हो सकती है और न भावना का ही वह साम्राज्य स्थापित किया जा सकता है कि जिसमे मर्यादाओ का एक दम लोप हो जाय और ब्रिज वनिताएँ अपने पतियो को खाना परोसना छोड़कर मुरली की तान मे लौलीन होकर लोक-लाज से किनारा करती हुई यमुना के तीर पर पहुँच जाएँ। वहाँ चीर-हरण जैसी लीलाओ का भी वर्णन हम नही मिल सकता। वहाँ तो धर्म की एक व्यवस्था है, समाज की एक व्यवस्था है, राज्य की एक व्यवस्था है। साहित्य की एक व्यवस्था है और उनकी मर्यादाओ का उलघन करके काव्य की रचना नहीं की जा सकती, चाहे उससे इस परिपाक मे बाधा उपस्थित हो, चाहे बहुत चमत्कार पूर्ण अलकारों का प्रयोग होने से रह जाए, चाहे कलाकार को कल्पन कुंठित घोषित कर दिया जाय, परन्तु उन मर्यादाओं का उलघन नही हो सकता क्यों कि उनका प्रतिबन्ध कवि की बुद्धि ने स्थापित किया है। कवि ने अपने विचार, कल्पना और अनुभूति का आश्रय लेकर एक राज्य- व्यवस्था कायम की है, प्राचीन आर्य-धर्म की परम्परा पर धर्म की मान्यताओ और उसके व्यापक सिद्धान्तों को

अपनाया है। समाज के नियमों और आदर्शों को मान्यता दी है, नीति को अपनाया है, मानव-धर्म की व्याख्या की है। अपने समय की प्रचलित सभी आर्य धर्म की मान्यताओं में सामंजस्य स्थापित करके एक सामान्य भक्ति-मार्ग की मर्यादावादी परम्परा का उत्थान करके गोस्वामी तुलसीदास ने अपने काव्य में अपनी बौद्धिकता का उत्कृष्ट उदाहरण पेश किया है। जहां तक विचार का सम्बन्ध है वह कवि ने अध्यात्म और लौकिक, दोनों ही पक्षों में पूर्ण रूप से निभाया है। कवि की रचनाओं का बौद्धिक स्तर पर मापने पर हमें कहीं भी उनका उथलापन दिखलाई नहीं देता। धर्म-राजनीति और समाज, हर क्षेत्र में उनकी पैनी दृष्टि पूरी गहराई के साथ पहुँची है। वर्तमान को कवि ने देखा है। प्राचीन में झांका है और भविष्य की कल्पना की है तथा अपनी व्यवस्थाओं के ढांचे प्रस्तुत किये हैं। कवि की राम-राज्य की कल्पना, एक महान् कल्पना है, जिसमें हर प्रकार की व्यवस्था का कवि ने उल्लेख किया है। राजा-प्रजा, परिवार, वर्ण-व्यवस्था, धर्म-व्यवस्था, समाज-व्यवस्था, पुरुष-धर्म, नारी-धर्म, सेवक-धर्म, सैनिक-धर्म, प्रजा-पालन, भ्रातृ धर्म, पुत्र-धर्म, अनुज-बन्धु-धर्म, बड़े भाई का धर्म, — मतलब यह है कि संसार में जो भी पारस्परिक सम्बन्ध होते हैं, उन सभी का कवि ने उल्लेख किया है, उदाहरण सहित स्पष्टीकरण किया है, और उन परिस्थितियों को पैदा करके सुझाव पेश किये हैं जिनमें आकर मनुष्य कर्तव्य-विमुख हो जाता है। तुलसी ने कहीं पर भी समस्याओं का स्पष्टीकरण भावनात्मक ढंग से नहीं किया, वरन् तर्क और न्याय का हमेशा सामने रखकर ही स्पष्टीकरण किया है। मानस के कथा-प्रवाह में हम देखते हैं कि ऐसे स्थल आते हैं जहां भावना प्रधान हो उठती है, परन्तु कर्तव्य और विचार की मर्यादा का उलंघन करके वह अपना मार्ग नहीं बनाती। कवि ने बुद्धि की सतर्कता से कर्तव्य की मर्यादा के बांध इतने दृढ बनाये हैं। कि भावना की लहरों का उनसे टकराकर वापस लौट आना होता है। तुलसी के काव्य की सरिता का फाट इतना चौड़ा है कि उसके अन्दर भावनाओं को लहराने और उभर कर आने तथा उछाल खाने के लिए पर्याप्त क्षेत्र है। भावनाओं का विकास कहीं भी रुकता नहीं, उसे कवि की निर्धारित सीमा में विस्तार करने का अवसर मिलता है। कवि के बुद्धि-तत्व की यही विशेषता है कि उसके साहित्य की भाषा परिमार्जित है, विचार परिमार्जित है, मान्यताएं परिमार्जित हैं; हर चीज परिमार्जन में ही चलती है।

धर्म के क्षेत्र में गोस्वामी तुलसीदास एक भक्त कवि थे परन्तु वेद-शास्त्रों द्वारा प्रवर्त्तित अध्यात्मिक विचारों को कवि ने सर्वथा मान्यता प्रदान की है। भक्ति-मार्ग को अपनाने के साथ-ही-साथ आपने ज्ञान-मार्ग की भी निंदा नहीं की। निर्गुण ब्रह्म को भी आपने मान्यता प्रदान की है। जिस काल में गोस्वामीजी का आविर्भाव हुआ,

उन दिनों निगुण ब्रह्म की उपासना का प्राधान्य था। गोस्वामीजी ने निर्गुण ब्रह्म की उपासना सर्वसाधारण के लिए एक कठिन समस्या मानकर उसकी जटिलता और अव्यावहारिकता का उल्लेख किया है और सगुण-भक्ति का प्रतिपादन किया है। इसका मूलकारण यही था कि कलियुग को उन्होने ज्ञान के लिए उपयुक्त काल नही माना, काकभुशुण्डि के मुख से वह कहलवाते भी है :

कलिजुग जोग न जग्य न ग्याना, एक अधार राम-गुन गाना।
सब भरोस तजि जो भज रामहि, प्रेम समेत गाव गुन ग्रामहि।
सोई भव तर कुछ संसय नाहीं, नाम प्रताप प्रगट कलि माहीं।
कलि जुग सम जुग आन नहिं, जौ नर कर बिस्वास।
गाइ रामगुग गन बिमल, भवतर बिनहिं प्रयास।

कवि ने राम-नाम के महत्त्व और राम-भक्ति के गान को ही अपनी भावना और रचना का विषय बनाया है। तुलसी ने धर्म सिद्धान्तों के क्षेत्र में ज्ञान और भक्ति का समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया है। सूर और नन्ददासकृत भक्ति मे ज्ञान की महत्ता को ठुकराकर उसका उपहास किया गया है, परन्तु तुलसीकृत भक्ति में ज्ञान की महत्ता को मान्यता प्रदान की गई है। तुलसी के काव्य में भक्ति की जहाँ प्रतिष्ठा मिलती है वहाँ ज्ञान की निन्दा या अप्रतिष्ठा नही मिलती। व्यवहार के क्षेत्र में भक्ति की सुगमता के कारण ही कवि उसे अपनाता है। तुलसी ने अपने काव्य में ज्ञान को महत्ता प्रदान की है :

राम काकभुशुण्डि से वरदान माँगने को कहते है :

ग्यान बिबेक बिरति बिग्याना, मुनि दुर्लभ गुन जे जग जाना।
आजु देऊँ सब संसय नाहीं, मांगु जो तोहि भाव मन माही॥

इसपर भुशुण्डि जी क्या सोचते है :

सुनि प्रभु बचन अधिक अनुरागेऊँ, मन अनुमान करन तब लागेऊँ।
प्रभु कह देन सकल सुख सही, भगति आपनी देन न कही॥
भगति हीन गुन सब सुख ऐसे, लवन बिना बहु बिजन जैसे।

इसपर काकभुशुण्डि जी बरदान माँगते है:

अविरल भगति बिशुद्ध तव, स्रुति पुरान जो गाव।
जेहि खोजत जोगीस मुनि, प्रभु प्रसाद कोउ पाव।
भगत कल्प तरु प्रनत हित, कृपा-सिन्धु सुखधाम।
सोहि निज भगति मोहिं प्रभु देहु दया करि राम।

इस प्रकार काक भुशुण्डिजी भक्ति के बिना गुण को व्यर्थ मानते हैं। गोस्वामी तुलसीदास ने ज्ञान और भक्ति को विरोधात्मक तत्व नहीं माना। ज्ञान से भक्ति को

श्रेष्ठअवश्य कहा है। राम काकभुशुण्डि जी से कहते है :

मन माया संभव संसारा, जीव चराचर बिबिध प्रकारा।
सब मम प्रिय सब मम उपजाए, सबते अधिक मनुज मोहि भाए।
तिन्ह में द्विज द्विज मे स्रुतिधारी, तिन्ह में निगम धरम अनुसारी।
तिन्ह में प्रिय विरक्त पुनि ग्यानी, ग्यानिहुते अति प्रिय विग्यानी।
तिन्ह ते पुनि मोहि प्रिय निज दासा, जेहिगति मोर न दूसर आसा।

उक्त पद में कवि ने भक्ति को ग्यान से ऊपर स्थान दिया है। कवि ने ज्ञान और भक्ति का निरूपण कैसा किया है इसका उल्लेख सविस्तार हम आगे देंगे। यहाँ केवल हमने यही प्रकट करने का प्रयास किया है कि कवि की रचनाओ में बुद्धि तत्व को भुलाकर नही चला गया। ज्ञान का सम्बन्ध भी सीधा बुद्धि से ही है। भावना प्रधान कवि ग्यान के बखेडे मे पडता ही नही और उसकी रचनाओ पर बुद्धि का कोई प्रतिबन्ध नहीं रहता। काल मे प्रबन्धात्मकता का होना भी बुद्धि तत्व का ही लक्षण है। भावना-पक्ष-प्रधान वाले कवि इसीलिए गीतिकाव्य-शैली को प्रधान रूप से अपनाते है।

भावनात्मकता

गोस्वामी तुलसीदास के काव्य मे भावना को वह लम्बी-चौड़ी उड़ाने भरने का मौका चाहे न मिला हो जो सूरसागर के वितृस्त क्षेत्र मे सूर ने उसे प्रदान किया है, परन्तु उनके काव्य मे कही भी ऐसा स्थल नही मिल सकता कि जहाँ भावना के मर्म की उपेक्षा करके कवि आगे बढ़ गया हो। कवि ने मानव-जीवन के भावनात्मक स्थलों को बहुत ही सतर्कता के साथ छुआ है और उनका बहुत ही आकर्षक तथा प्रभावात्मक चित्रण किया है। राम के शिशु-रूप का सुन्दर वर्णन देखिए कवि कितनी भावुकता के साथ करता :

बर दन्त की पंगति कुन्द कली, अधराधर पल्लव खोलन की।
चपला चमकै घन बीज जगै, छबि मोतिन माल अमोलन की।
धुँधरारी लटैं लटकै मुख ऊपर, कुण्डल लोल कपोलन की।
निछावरि प्रान करै तुलसी, बलि जाऊँ लला इन बोलन की।

× × × ×

कबहूँ ससि माँगत आरि करैं, कबहूँ प्रतिबिम्ब निहारि डरैं।
कबहूँ करताल बजाइ कै नाचत, मातु सबै मन मोद भरैं।
कबहूँ रिसिआइ कहै दृष्टि कै, पुनि लेत सोई जेहि लागि अरैं।
अवधेस के बालक चारि सदा तुलसी मन मन्दिर में बिहरैं।

—कवितावली

कौशल्या अपने लाल को पालने में झुलाते हुए लोरियाँ गाती है :

ललन लोने लेरुआ, बलि मैया।
सुख सोइए नींद बेरिया भई चारु-चरित चारयों भैया।
बहत मलह इ उर छिन-छिन छगन छबीले छोह छैया।
मोद कन्द कुल कुमुद चन्द्र मेरे रामचन्द्र रघुरैया।

—गीतावली

विश्वामित्र के साथ राम और लक्ष्मण के चले जाने पर कौशल्या की भावना का चित्रण देखिए कितना उद्वेगपूर्ण है :

मेरे बालक कैसे धौं मग निबहहिंगे ?
भूख पियास सीत स्रम सकुचनि क्यों कौसिकहि बहहिंगे।
को भोर ही उबटि अहरैहै, काढ़ि कलेऊ दै है।
को भूषण पहिरैई निछावरि करि लोचन सुख लै है।

—गीतावली

कृष्ण के मथुरा चले जाने पर सूर ने भी यशोदा के मुख से इसी प्रकार की भावना भरी है :

संदेसो देवकी सों कहियो।
तुम तौ देव जानतिहि ह्वै हौ तऊ मोहि कहि आवै।
प्रात समै मेरे लाल लड़ैतहि माखन रोटी भावै।
अब यह सूर मोहि निसि बासर बड़ो रहत जिय सोच।
अब मेरे अल लड़ैते लालन ह्वै है करत सकोच।

जब सीताजी बन को चलती है तो उनकी यात्रा का कवि ने बहुत ही कलात्मक तथा भावनात्मक चित्रण प्रस्तुत किया है :

पुर तें निकसी रघुबीर बधू, धरि धीर दये मग में डग द्वै।
झलकीं भरि भाल कनी जल की, पुट सूखि गये मधुराधर वै।
फिरि बूझति है 'चलनो अब केतिक, पर्णकुटी करिहौ कित ह्वै।'
तिय की लखि आतुरता पिय की अँखियाँ अति चारु चलीं जल च्वै।

— कवितावली

राम-वियोग में तड़पते हुए घोड़ों का चित्रण देखिए :

अली हौं इन्हैं बुझावौं कैसे ?
लेत हिये भरि-भरि पति को हित मातु हेतु सुत जैसे।
बार-बार हिहिनात हेरि उत जो बोलै कोउ द्वारे।
अंग लगाइ लिए बारे तें करुनामय सुत प्यारे।

लोचन सजल सदा सोवत से खान-पान बिसराये।
चितवत चौंकि नाम सुनि सोचत राम सुरति उर आये।
तुलसी प्रभु के बिरह बधिक हठि राजहंस से जोरे।
ऐसु हौं दुखित देखि हौं जीवति राम लखन के घोरे।

— गीतावली

गीतावली में राम-लक्ष्मण और सीता के प्रति ग्राम-नारियों के सहृदय व्यवहार तथा प्रेमोद्रेक का चित्रण कवि ने खूब किया है। कैकेयी की भी करुणा-भरी मूर्ति देखिए कवि ने कितनी सजीव चित्रित की है :

कैकेयी जौलौं जियति रही।
तौ लौ बात मातु सौं मुह भरि भरत न भूलि कही।
मानो राम अधिक जननीते जननिहु गँस न गही।
सीय लखन रिपुदवन राम-रुख लाखि सबकी निबही।

— गीतावली

कवि भावना के उद्रेक मे केवल मानवीय सहृदयता की ओर ही आकृष्ट नहीं हुआ है वरन् उसने प्रकृति के सौंदर्य को भी निरखने मे काफी सहृदयता दिखलाई है। चित्रकूट का वर्णन देखिए कितना मनोहर है :

सब दिन चित्रकूट नीको लागत।
बरषा ऋतु प्रवेस बिसेष गिरि देखत मन अनुरागत।
चहुँ दिसि बन सम्पन्न बिहँग मृग बोलत सोभा पावत।
जनु सुनरेस देस पुर प्रमुदित प्रजा सकल सुख छावत।
सोहत स्याम जलद मृदु घोरत धातु रँगमगे सृंगनि।
मनहुँ आदि अम्भोज विराजत सेवित सुर मुनि-भृंगनि।
सिखर परस घन-घटहिं, मिलति बग पाँति सो छबि कवि बरनी।
आदि बराह बिहरि बरिधि मनो उठयो है दसन धरि धरनी।
जलजुत बिमल सिलनि झलकत नभ बन प्रतिबिम्ब तरंग।
मानहुँ जग रचना विचित्र बिलसति बिराट अंग-अंग।
मंदाकिनिहि मिलत झरना-झरि भरि-भरि जल आछे।
तुलसी सकल सुकृत सुख लागे राम भगति के पाछे।

— गीतावली

प्रेमाकर्षण का भी तुलसीदास ने जनक की फुलवारी में सीता और राम के मिलन द्वारा बहुत सुन्दर चित्रण किया है,परन्तु दोनों के बीच मे लक्ष्मण की उपस्थिति ने कवि की मर्यादा को विशृंखल नही होने दिया।

राम और लक्ष्मण को बाटिका मे देखकर सीता की सखी उससे कहती है।

देखन बाग कँअर दुइ आये, बय किसोर सब भांति सुहाये।
स्याम गौर किमि कहउँ बखानी, गिरा अनयन नयन बिनु बानी।
सुनि हरषीं सब सखी सयानी, सिय हिय अति उत्कंठा जानी।
एक कहइ नृप सुत तेइ आली, सुने जे मुनि सँग आये काली।
जिन्ह निज रूप मोहनी डारी, कीन्हे स्वबस नगर-नर-नारी।
बरनत छबि जहँ-तहँ सब लोगू, अवसि देखिअहिं देखन जोगू।

यह सुनकर सीता उस ओर आकृष्ट होती है :

तासु बचन अति सियहि सुहाने, दरस लागि लोचन अकुलाने।
चली अग्र करि प्रिय सखि सोई, प्रीति पुरातन लखै न कोई।

सीता राम की ओर और राम सीता की ओर स्वाभाविक रूप से बढ़ते है :

कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि, कहत लखन सन राम हृदय गुनि।
मानहुँ मदन दुंदभी दीन्ही, मनसा विस्व विजय कहँ कीन्ही।
अस कहि फिरि चितये तेहि ओरा, सिय मुख ससि भये नयन चकोरा।
भये बिलोचन चारु अचंचल, मनुहुँ सकुचि निमि तजे दिगचल।

राम के हृदय में सीता का सौदर्य समाजाता है और वह अपने मन-ही-मन सोचते है :

जनु बिरञ्चि सब निज निपुनाई, बिरचि बिस्व कहँ प्रगट जनाई।
सुन्दरता कहुँ सुन्दर करई, छबि गृह दीप सिखा जनु बरई॥

राम अपने भावों को मर्यादा के साथ अपने अनुज लक्ष्मण पर प्रदर्शित करते हैं। दूसरी ओर सीता भी राम को देखकर प्रभावित होती है और राम का पौरुष तथा सौंदर्य उसपर अपनी मोहनी डालता है :

चितवति चकित चहूँ दिसि सीता, कहँ गये नृप किसोर मन चिन्ता।
जहँ विलोक मृग-सावक नैनी, जनु तहँ बरसि कमल सित स्रेनी।
लता ओट तब सखिन लखाये, स्यामल गौर किसोर सुहाये।
देखि रूप लोचन ललचाने, हरषे जनु निज निधि पहिचाने।
थके नयन रघुपति छबि देखे, पलकमेहहूँ परिहरीं निमेषें
अधिक सनेह देह में मेरी, सरद ससिहि जनु चितव चकोरी
लोचन मग रामहिं उर आनी, दीन्हें पलक कपाट सयानी

इसी क्षण दोनों भाई लता-भवन से बाहर प्रकट होते हैं :

लता-भवन तें प्रकट भे तेहि अवसर दोउ भाई।
निकसे जनु जुग बिमल बिधु, जलद-पटल बिलगाई।
सोभा-सींव सुभग दोउ बीरा, नील पीत जलजात सरीरा।
मोर पंख सिर सोहत नीके, गुच्छ बीच बिच कुसुम-कली के।
भाल तिलक स्रमबिन्दु सुहाये, स्रवन सुभग भूषन छबि छाये।
बिकट भृकुटि कच घुँघरवारे, नव सरोज लोचन रतनारे।
चारु चिबुक नासिका कपोला, हास-बिलास लेत मन मोला।
मुख छबि कहि न जाइ मोहि पाहीं, जो बिलोकि बहु काम लजाहीं।
उर मनि-माल कम्बु कल ग्रीवा, काम कलभ कर भुजबल सींवा।

कवि ने उक्त भावनात्मक चित्रण में सीता और राम के सौदर्य का वर्णन करते हुए अपनी मर्यादा की लीक को निभाया है। प्रेम का प्रदर्शन भी उतना खुलकर नहीं होता कि जिसमें 'लोक-लाज कुल की मर्यादा' को उनकी भेंट चढ़ाने की नौबत आजाये।

इस प्रकार हमने देखा कि कवि का भावना-पक्ष भी किसी प्रकार उनके बुद्धि-पक्ष से कम प्रबल और प्रभावात्मक नही है। भावनात्मक स्थलों के चित्रण मे कवि को पूर्ण सफलता मिली है और हृदय को प्रभावित करके भावना की गहरी सरिता में गोते लगवाने की क्षमता कवि मे पूर्ण रूप से विद्यमान है। यह सच है कि तुलसी का भावना-पक्ष सतुलित है और वह बन्धन-मुक्त होकर प्रसारित नही होता, परन्तु आवश्यक चित्रण और वर्णन के स्थलो को भी कवि-दृष्टि और कल्पना तथा भावना ने कही छूने से छोड़ दिया हो, ऐसे भी स्थल उनके काव्य में खोजने पर नही मिलते। कवि ने बहुत ही सजगता और सतर्कता के साथ भावनात्मक स्थलों को चित्रित किया है और मार्मिक स्थलो के विवेचन मे कवि को आशातीत सफलता मिली है। जैसा कि हम ऊपर भी कह चुके है कवि ने भावना और विवेक का सामंजस्य स्थापित किया है। भावना-पक्ष मे आपने दास्य-भावना की भक्ति को लेकर अपने राम के प्रागण मे आत्म-समर्पण किया है। न कवि अपने इष्टदेव की बहुरिया बनने का स्वप्न देखता है और न सखा बनने का ही, वह तो अपने राम का एक मात्र दास है और उसके जीवन का लक्ष्य भी आत्मसर्मपण ही है। विनयपत्रिका में वह अपनी अरजी भगवान् के दरबार मे हनूमानजी की प्रेरणा से भेजता है। वह तो सीधा पहुँचने का भी साहस नही करता,—"**आज हों एक-एक करि टरिहौं। कै हमही कै तुमही माधव अपन भरोसे लरिहौं।**" वाली धृष्टता तो तुलसी से स्वप्न में भी सम्भव नही। आत्मनिवेदन की भावना का जितना सजीव चित्रण तुलसी ने किया है उतना अन्यत्र मिलना दुर्लभ है।

विनय पत्रिका में कवि ने भक्ति-प्राप्ति के साधनों का वर्णन किया है। दीनता, मानमर्षता, भर्त्सना, मयदर्शना, आश्वासन, मनोराज्य और विचारणा का प्रतिपादन कवि के पदो मे मिलता है। अपनी सभी ग़लतियो को दास अपने ही कंधों पर उठाता है, उनका भार वह अपने भगवान् पर नही डालता :

कैसे देऊँ नाथहिं खोरि।
काम लोलुप भ्रमत मन हरि भगति परि हरि तोरि।
बहुत प्रीति पुजाइबे पर, पूजिबे पर थोरि।
देउँ सिख, सिखयो न मानत, मूढ़ता अस मोरि।

+ + + +

दास्यभावना मे प्रेरित भक्त में अभिमान का लेश भी नहीं रहता। वह तो दीन-भावना से प्रेरित होकर गिडगिडाना ही जानता है :

काहे तें हरि मोहि बिसारो।
जानत निज महिमा, मेरे अघ, तदपि न नाथ सँभारो।
पतित पुनीत दीन हित असरन-सरन कहत स्रुति चारों।
हौं नहिं अधम सभीत दीन ? किधौं बेदन मृषा पुकारौ ?

वह अपने इष्टदेव से सर्वदा भयभीत रहता है :

राम कहत चलु, राम कहत चलु, राम कहत चलु भाई रे।
नाहि तौ भव बेगारि महँ परिहै, छूटत अति कठनाई रे।

कवि मनोराज्य मे विचरण करता हुआ अपनी अभिलाषाओं की पूर्ति की आशा करता है :

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो।
श्री रघुनाथ कृपालु कृपा तें संत सुभाव गहौंगो।
जथा लाभ संतोष सदा, काहू सों कछु न चहौंगो।

उक्त पद में कितने आत्म-संतोष की भावना को कवि ने निहित किया है। गोस्वामी तुलसीदास के काव्य में हमें माता की भावना, कवि की भावना, भक्त की भावना, स्त्री की भावना, पति की भावना, पिता की भावना, सेवक की भावना, स्वामी की भावना, प्रजा की भावना, राजा की भावना, शत्रु और मित्र की भावना,—सभी के तो दर्शन होते है। कवि के व्यापक दृष्टिकोण से बचकर भक्ति का कोई भी पहलू छूटता नही है।

रसात्मकता

ऊपर हम देख चुके है कि कविवर तुलसी ने भावना की मानसिक दशाओं, और भावनाओं के साथ-साथ प्रकृति के अन्दर भी पैठने का सफल प्रयास किया है।

प्रकृति के सजीव चित्रणों के साथ-साथ पशु-पक्षियों को भी अछूता नहीं छोड़ा है :

हय गय कोटिन्ह केलि मृग, पुर पशु चातक मोर।
पिक रथांग सुक सारिका, सारस हंस चकोर।

राम के वियोग में सुमन्त घोड़ों को अयोध्या की दिशा में हाँकने में असमर्थ हो जाता है :

सोक सिथिल रथु सकई न हाँकी, रघुबर बिरह पीर उर बाँकी।
चरफरहिं मग चलहिं न घोरे, बन मृग मनहु आनि रथ जोरे।
अढुकि परहिं फिरि हेरहिं पीछे, राम बियोग बिकल दुख तीछें।
जो कह रामु लखनु बैदेही, हिंकरि-हिंकरि हित हेरहिं तेही।
बाजि बिरह गति कमि कहि जाती, बिनु मनि फनिक बिकल जेहि भाँती।

कवि की मानसिक दशाओं के इस चित्रण में रसानुभूति के क्षेत्र में कहाँ तक सफलता मिली है यहाँ हमें यह देखना। राम और सीता का प्रेम, सात्विक प्रेम, को लेकर मिलन-शृंगार का चित्रण हम भावना-पक्ष के स्पष्टीकरण में कर चुके हैं। तुलसी का यह पक्ष न तो जायसी के समान रत्नसेन की कठिन यात्रा के रूप में होता है और न ही कृष्ण और राधा के मिलन के समान। न तो रत्नसेन के समान राम सीता के दर्शन करके मूर्छित हो होते हैं और न सीता राम से मिलने के लिए उन्हें राधा के समान सर्प का विष उतारने वाला बनला कर ही साँप काटे का बहाना करती है। यहाँ तो भारतीय परम्परा के अनुसार स्वयम्बर होता है और उसमें स्वयम्बर की शर्त को पूरी करके राम सीता का पाणिग्रहण करते हैं। कवि-कल्पना द्वारा वाटिका में उनका पूर्व मिलन करके काव्य-सौंदर्य और रसोद्रेक में सहायक होता है।

सीता एक आदर्श भारतीय नारी है। वह तो इस लोक के जहा तक नेह और नाते हैं उन्हें पति के अन्दर ही सन्निहित पाती है। राम सीता को सुकुमारी कहकर उन्हें अयोध्या में ही रहने का आदेश करते हैं। उन्हें बन की भयानक वस्तु-स्थिति का ज्ञान कराते हैं तो सीता कितना मधुर व्यंग्यात्मक उत्तर देती है :

मैं सुकुमारि नाथ बन जोगू, तुम्हि उचित तप मोहि कहँ भोगू।

सीता के इस उत्तर को सुनकर राम उन्हें साथ चलने की आज्ञा दे देते हैं। राम के अयोध्या छोड़ने पर अयोध्यावासियों की जो दशा होती है उसमें करुण-रस का आभास मिलता है, परन्तु काव्य में वास्तविक करुण-रस का संचार वहीं से होता है जहाँ सीता को रावण उठाकर ले जाता है और राम उनके विरह में दुखी होकर आँसू बहाते तथा खग, मृग से सीता का पता पूछते हैं :

हे खग मृग हे मधुकर श्रेणी, तुम देखी सीता मृदु बैनी।

विप्रलम्भ शृंगार के अंतर्गत एक पद देखिए जिसमें राम लक्ष्मण से कहते हैं :

लछिमनु देख बिपिन कई सोभा।
देखत केहि करि मन नहिं छोभा॥
नारि सहित सब खग मृग बृंदा।
मानहु मोरि करत हहिं निन्दा॥
हमहि देखि मृग निकर पराहीं।
मृगी कहहिं तुम कहुँ भय नाहीं॥
तुम्ह आनन्द करहु मृग जाये। कंचन मृग खोजन ये आये॥
संग लाइ करिनी करि लेहीं। मानहुँ मोहि सिखावनि देहीं॥
देखहु तात बसंत सुहावा। प्रिया हीन मोहि भय उपजावा॥

इस विप्रलम्भ शृंगार के ठीक विपरीत संयोग शृंगार का स्थायी भाव रति किस तरह आलम्बन, उद्दीपन और व्यभिचारी उपकरणों को पाकर पुष्ट रस का रूप धारण करता है, इसका एक सुन्दर उदाहरण देखिये :

दूलह श्री रघुनाथ बने, दुलही सिय सुन्दर मंदिर माहीं।
गावहि गीत सबै मिलि सुन्दरि, वेद जुवा जुरि बिप्र पढ़ाहीं॥
राम को रूप निहारति जानकि, कंकन के नग की परछाहीं।
यातें सबै सुधि भूलि गई, कर टेकि रही पल टारति नाहीं॥

—कवितावली-बाल कांड-छंद

गोस्वामी तुलसीदास ने शृंगार के दोनो ही पक्षो को पूर्ण सफलता के साथ निभाया है। कहीं भी उसके स्पष्टीकरण में अस्वाभाविकता नहीं आ पाई है। तुलसी के विप्रलम्भ शृंगार में जायसी जैसी वीभत्सात्मकता नहीं है। यहाँ न तो 'रकत के आँसू' ही गिरते हैं और न 'हाड ही संख' बनते हैं। **'बिरह सरागग्नि भूँजे माँसू। गिर-गिर परैं रकत कै आँसू'** वाली स्थिति भी तुलसी के विरह की नहीं होती। सीता जब राम-वन-गमन की बात सुनती है तो उतनी विह्वल नहीं होती जितनी राम का उपदेश सुनकर होती है :

सुनि मृद बचन मनोहर पिय के।
लोचन ललित भरे जल सिय के॥
सीतल सिख दाहक भई कैसे। चकइहि सरद चन्द निसि जैसे॥
उतर न आव विकल बैदेही। तजन चहत सुचि स्वामि सनेही॥
बरबस रोकि बिलोचन बारी। धरि धीरजु उर अवनि कुमारी॥

लागि सासु पग कह कर जोरी।
छमबि देबि बड़ि अबिनय मेरी॥
दीन्ह प्रान पति मोहि सिख सोई।
जेहि बिधि मोर परम हित होई॥
मैं पुनि समुझि दीख मन माहीं।
पिय बियोग सम दुख जग नाहीं॥
प्रान नाथ करुना अयन सुन्दर सुखद सुजान।
तुम्ह बिनु रघुकुल-कुमुद बिधु सुरपुर नरक समान॥

—मानस-अयोध्या काण्ड

हास्यरस : रामचरितमानस का प्रधान रस शांत ही है, परन्तु जैसा कि हमने ऊपर देखा कवि ने शृंगार के दोनों पहलुओं को लेकर भी कलात्मक प्रसगों की सृष्टि की है। नीचे हास्य रस का एक उदाहरण देखिये ! यहाँ तुलसी ने राम को आलम्बन विभाव बना कर सुन्दर परिहास किया है :

बिंध्य के बासी उदासी तपो व्रतधारी महा, बिनु नारि दुखारे।
गौतम तीय तरी, तुलसी सो कथा सुनि भे मुनि बृन्द सुखारे॥
ह्वैहै सिला सब चन्द्रमुखी परसे पद मंजुल कंज तिहारे।
कीन्हीं भली रघुनायक जू करुना करि कानन को पग धारे॥

—कवितावली-अयोध्या काण्ड-छन्द २८

गोस्वामीजी का हास्य शिष्ट हास स्मित के अंतर्गत आता है,—अवहसित, अथवा अतिहसित की कोटि में नहीं।

करुण रस : स्थायी भाव शोक अपने उद्दीपन तथा संचारियों से पोषित होकर भी मानस के बहुत से स्थानों पर सामने आता है। मेघनाद के सिर को देखकर मंदोदरी की दशा का चित्रण देखिये :

पति सिर देखत मंदोदरी। मुरछित बिकल धरनि खसि परी॥
जुबति बृन्द रोवत उठि धाईं। तेहि उठाइ रावन पहिं आईं॥
पति गति देखि ते करहि पुकारा। छूटे कच नहिं बपुष संभारा॥
उर ताड़ना करहि बिधि नाना। रोवत करहिं प्रताप बखाना॥

लक्ष्मण के मूर्छित होने पर भी करुण रस काव्य में प्रवाहित होता है। गीतावली के उत्तरकाण्ड के सीता-त्याग सम्बन्धी गीतों में भी करुण रस का संचार होता है।

तुलसी के काव्य में अद्भुत रस की भी झलक यत्र-तत्र मिलती है। सती जब राम की परीक्षा लेने के लिए सीता का रूप धारण करती हैं तो अद्भुत रस का ही संचार होता है।

वीर रस : तुलसीदास ने अपने चरित्रनायक राम का युद्धवीरके नाते भी चित्रण किया है। लंकाकाण्ड में वीर रस की ही प्रधान रूप से सृष्टि हुई है। कवितावली में कवि ने हनूमान की वीरता का सुन्दर चित्रण किया है। मानस के बालकाण्ड में जनक की सभा के अन्दर लक्ष्मण के ये शब्द भी वीर रस पूर्ण हैं :

तोरऊँ छत्रक दंड जिमि तव प्रताप बल नाथ।
जो न करऊँ प्रभु पद सपथ पुनि न धरऊँ धनु हाथ॥

युद्धवीरता के साथ-ही-साथ राम में कवि ने दानवीरता और दयावीरता को भी लक्षित किया है। राम रावण की सारी सम्पत्ति विभीषण को ज्यों-की-त्यों दे देते है। कवि उसका इस प्रकार वर्णन करता है :

जो संपति सिव रावनहि दीन्हि दिये दस माथ।
सोइ संपदा बिभीषनहिं सकुचि दीन्ह रघुनाथ॥

—मानस-सुन्दर काण्ड-४९

धर्मवीरता का एक उदाहरण देखिए :

मंगल समय सनेह बस सोच परिहरिय तात।
आयसु देइय हरषि हिय कहि पुलके प्रभु गात॥
धन्य जनम जगतीतल तासू। पितहि प्रमोद चरित सुनि जासू॥
चारि पदारथ करतल ताके। प्रिय पितु मातु प्रान सम जाके॥
आयसु पालि जनम फलु पाई। ऐहउँ बेगहि होउ रजाई॥
बिदा मातु सन आवऊँ मांगी। चलिहुँ बनहि बहुरि पग लागी॥

गोस्वामी का काव्य-क्षेत्र इतना व्यापक और विस्तृत है कि उसमें सभी रसों को कहीं-न-कही पर स्थान मिल गया है। रौद्र, भयानक और वात्सल्य के उदाहरणों की भी काव्य में कमी नहीं है। इसके सभी उपकरणों को एकत्रित करके कवि ने अपने काव्य मे जो योजना प्रस्तुत की है वह एक सफल कला-मर्मग्य की हिन्दी साहित्य को अनूठी देन है। तुलसी के काव्य में हमें विरोधी रसों का एक स्थान पर आना नहीं पाया जाता और रस-दोषों का भी अभाव है। कवि ने सहायक रसों को प्रस्तुत करके प्रधान रस को बल प्रदान किया है।

अलंकार-योजना

तुलसी के काव्य की रस-योजना पर हम संक्षेप में विचार कर चुके हैं। रस के साथ-ही-साथ अलंकार भी काव्य-सौंदर्य का एक प्रधान साधन है। अलंकारवादियों की निम्न उक्ति :

अंगी करोति यः काव्यं शब्दार्थावनलंकृती।
असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलं कृती॥

अर्थात् जो विद्वान् अलंकार-रहित शब्द और अर्थ को काव्य मानता है वह अग्नि को उष्णता रहित क्यों नही मानता। परन्तु तुलसी अलंकार को काव्य का सारभूत अंग मान कर चलने वाले कवियों में से नहीं थे। वह तो अलंकार को केवल मानते थे कि यह उपयुक्त रीति से प्रयुक्त होने पर काव्य के भाव को उत्कर्ष प्रदान करता है और वस्तु के रूप, गुण इत्यादि का तीव्र अनुभव कराने में सहायता देता है। अपने काव्य की कमनीयता बढ़ाने के लिए तुलसी ने यथास्थान अलंकारों का प्रयोग किया है और इसमें कवि को कलात्मक सफलता मिली है। तुलसी ने अलंकारों तथा उभयालंकारो को उनके भेद और उपभेदों के साथ प्रयोग में लिया है।

गोस्वामीजी के काव्य में हमें शब्दालकारों की योजना बहुत अधिक नहीं मिलती। वास्तव में गम्भीर प्रकृति वाले तुलसी के लिए शाब्दिक कलाबाजियाँ साहित्य में कोई विशेष महत्त्व नही रखती थीं। वह तो भावना और विचार के कवि थे। परन्तु फिर भी स्वाभाविक रूप से शब्दालंकारों के भी प्रायः सभी रूप आपके व्यापक काव्य -क्षेत्र में कही-न-कही पर आही गये है।

अर्थालकारो की योजना कवि के काव्य में बहुत सुन्दर ढंग से की गई है और आचार्यो द्वारा निर्धारित अलंकारों का शायद ही कोई ऐसा रूप हो जो कवि के काव्य में उपयुक्त-से-उपयुक्त रूप न पा सका हो। गोस्वामीजी ने जिस अलकार का सब से अधिक प्रयोग किया है वह रूपक अलकार है। छोटे-छोटे निरंग और परम्परित रूपकों के अतिरिक्त बडें-बड़े सांग रूपकों का भी प्रयोग कवि ने मानस, गीतावली और विनयपत्रिका में किया है। इन लम्बे-लम्बे सांग रूपको में सादृश्य और साधर्म्य का आद्योपान्त निर्वाह हुआ है। इन रूपकों की सहायता से गम्भीर विषयों को सरल बनाने मे कवि को सफलता मिली है और काव्य में सरसता तथा रोचकता का भी संचार हुआ है। इन रूपकों में सादृश्य प्रस्तुत करने के लिए कवि ने केवल परम्परा-गत उपमानों को ही नही चुना, वरन् स्वयं पर्य्यवेक्षण-शक्ति के आधार पर भी प्रकृति के व्यापारों से उदाहरण चयन किये हैं। इस चयन में कवि की अपनी मौलि-कता रही है और रचना को नवीन सौंदर्य मिला है। सांग रूपक के उदाहरण मानस के प्रथम सोपान में 'मानस-रूपक', 'कविता-सरिता', 'रघुवर बाल सूर्य,' द्वितीय सोपान में याग-राज,' 'अहेरी चित्रकूट,' 'करुणा सरिता' और आखरी सोपान में 'ज्ञान-दीपक,' तथा 'भक्ति-मणि' विशेष उल्लेखनीय है। इन रूपकों का वर्णन बहुत ही विस्तृत है परन्तु फिर भी कवि ने सादृश्य प्रस्तुत करने में कही कमी नहीं आने दी। सभी उदाहरणों को यहाँ प्रस्तुत करना असम्भव है। फिर भी निम्न उदाहरण देखिए

सुमति भूमि थल हृदय अगाधू, बेद पुरान उदधि घन साधू ।
बरषहि राम सुजस बरबारी, मधुर मनोहर मंगलकारी ।
लीला सगुन जो कहहिं बखानी, सोइ स्वच्छता करइ मल हानी ।
प्रेम भगति जो बरनि न जाई, सोइ मधुरता सुसीतलताई ।
जो जल सुकृत सालि हित होइ, राम भगत जन जीवन सोइ ।
मेधा महिगत सो जल पावन, सकिलि श्रवन मग चलेउ सुहावन ।
भरेउ सुमानस सुथल थिराना, सुखद सीत रुचि चारु चिराना ।

सुठि सुन्दर संवाद बर, बिरचे बुद्धि बिचारि ।
तेइ एहि पावन सुभग सर, घाट मनोहर चारि ।

सप्त सुबन्ध सुभग सोपाना, ग्यान नयन निरखत मन माना ।
रघुपति महिमा अगुन अबाधा, बरनब सोइ बर बारि अगाधा ।
राम सीय जस सलिल सुधा-सम, उपमा बीचि बिलास मनोरम ।
पुरइनि सघन चारु चौपाई, जुगुति मंजु मनि सीप सुहाई ।
छन्द सोरठा सुन्दर दोहा, सोइ बहुरंग कमल कुल सोहा ।
अरथ अनूप सुभाव सुभासा, सोइ पराग मकरन्द सुबासा ।
सुकृत-पुंज मंजुल अलिमाला, ग्यान बिराग बिचार मराला ।
धुनि अवरेब कबित गुन जाती, मीन मनोहर ते बहु भांती ।
अरथ धरम कामादिक चारी, कहब ग्यान बिज्ञान बिचारी ।
नव रस जप तप जोग बिरागा, ते सब जलचर चारु तड़ागा ।
सुकृति साधु नाम गुन गाना, ते बिचित्र जल बिहग समाना ।
सन्त-सभा चहुँ दिसि अँबराई, श्रद्धा रितु बसन्त सम गाई ।
भगति निरूपन बिबिध बिधाता, छमा दया दम लता बिताना ।
सम जम नियम फूल फल ज्ञाना, हरि पद रति रस बेद बखाना ।
औरउ कथा अनेक प्रसंगा, तेइ सुक पिक बहु बरन बिहंगा ।

पुलक बाटिका बाग बन, सुख सुबिहंग बिहारू ।
माली सुमन सनेह जल, सींचत लोचन चारू ।

\+ + \+ + \+ +

आस्रम सागर सांत रस, पूरन पावन पाथु ।
सेन मनहुँ करुना सरित, लिए जात रघुनाथ ॥

बीरति ग्यान बिराग करारे । बचन ससोक मिलत नद नारे ।
रोष उसास समीर तरंगा । धीरत तट-तरु-बर कर भंगा ।
बिषम बिषाद तोराबति धारा । भय भ्रम भँवर अबर्त अपारा ।

केवट बुध बिद्या बड़ि नावा। सकहि न खेइ ऐक नहिं आवा॥
बनचर कोल किरात बेचारे। थके बिलोकि पथिक हिय हारे॥
आस्रम उदधि मिली जब जाई। मनहु उठेउ अंबुधि अकुलाई॥[1]

गोस्वामीजी ने, जैसा कि हम ऊपर लिख चुके हैं, परम्परागत उपमाओं के अतिरिक्त भी बहुत अनूठी तथा मौलिक उपमाएँ प्रस्तुत की हैं। राम बहोरी शुक्लजी ने तो इस क्षेत्र में आपकी तुलना सस्कृत कवि कालीदास से की है। जनक-सभा में लक्ष्मण द्वारा की गई प्रतिज्ञा में देखिए उपमा का कितना कलात्मक चमत्कार कवि ने प्रस्तुत किया है :

ज्यौं तुम्हार अनुसासन पावौं, कन्दुक इव ब्रह्माण्ड उठावौं।
कांचे घट जिमि डारौं फोरी, सकौं मेरु मूलक जिमि तोरी।

एक दूसरा उदाहरण देखिए :

जिमि करि निकर दलइ मृग राजू, लेइ लवेटि लवा जिमि बाजू।
तैसेहिं भरतहि सेन समेता, सानुज निदरि निपातहुँ खेता।

++ ++

मनि बिनु फनि जिमि जलु बिन मीना, मम जीवन तिमि तुम्हहि अधीना।

मालोपमा का एक सुन्दर उदाहरण देखिए :

हरन मोह तम दिनकर कर से, सेवक सालि पाल जलधर से।
अभिमत दानि देव तरुबर से, सेवत सुलभ सुखद हरिहर से।
सुकबि सरद नभ मन उड गन से, राम भगत जनि-जीवन धन से।
सकल सुकृत फल भूरि भोग से, जग हित निरुपधि साधु-लोग से।
सेवक मन मानस मराल से, पावन गंग तरंग भाल से।

मालोपमा का एक उदाहरण कवितावली से प्रस्तुत किया जाता है :

कीर के कागर ज्यों नृपचीर विभूषन उप्पम अंगनि पाई।
औध तजी मग बास के रूख ज्यों पंथ के साथी ज्यों लोग लुगाई।
संग सुबन्धु पुनीत प्रिया मनो धर्म क्रिया धरि देह सुहाई।
राजिवलोचन राम चले तजि बाप को राज बटाऊ की नाईं।

उपमा के कुछ और सुन्दर उदाहरण देखिए :

तुलसी मन रंजन रंजित अंजन नैन सुखंजन जातक से।
सजनी ससि में समसील उभै नवनील सरोरुह से विकसे॥[2]

++ ++

१. मानस, अयोध्या काण्ड, पृष्ठ २७५
२. कवितावली, बाल काण्ड, छन्द २

दिये पीठि पाछे लगे, सनमुख होत पराय।[1]
तुलसी संपति छाँह ज्यों, लखि दिन गँवाय॥

++ ++

जनक बचन हुए बिरवा लजारु के-से,
बीर रहे सकल सकुचि सिर नाइ के।[2]

उपमा की ही भाति कवि ने प्रतीप के भी सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। प्रतीप भी वास्तव में उपमा का ही रूपान्तर है। इसमें उपमेय को उत्कर्ष देने के लिए उपमा का ढंग बदल दिया जाता है। प्रतीप के उदाहरण देखिए :

१. नील सरोरुह नील मनि, नील नीलधर स्याम।
लाजत तन सोभा निरखि, कोटि-कोटि सत काम।

२. राजकुँअर दोउ सहज सलोने, इन्ह ते लही दुति मरकत सोने।

३. बहुति बिचार कीन्ह मन माहीं, सीय बदन सम हिमकर नाहीं।

प्रस्तुत के द्वारा अप्रस्तुत का उत्कर्ष बढ़ाकर उत्प्रेक्षा अलंकार का भी कवि ने प्रयोग किया है। उत्प्रेक्षा अलंकार का प्रयोग कवि की प्रायः सभी रचनाओं में मिलेगा कहीं-कही तो कवि उत्प्रेक्षा-पर-उत्प्रेक्षा करते हुए माला सी बनाता चला जाता है। उदाहरण देखिये :

जानकी बर सुन्दर माई।
इन्द्र-नीलमनि स्याम सुभग अंग-अंग मनोजनि बहु छबि छाई॥
अरुन चरन, अंगुली मनोहर, नख दुतिवंत कछुक अरुनाई॥
कंज दलनि पर मनहुँ भौम दस बैठ अचल सुसदसि बनाई।
पीत जानु उर चारु जटित मनि नूपुर पद कल मुखर सुहाई॥
पीत पराग भरे अलिगन जनु जुगल जलज लखि रहे लोभाई।
किंकिन कनक कंज अवली मृदु मरकत सिखर मध्य जनु जाई॥
गई न उपर सभीत नमित मुख, बिकसि चहुँदिसि रही लोनाई।
जज्ञोपवीत बिचित्र हेममय, मुक्ता माल उरसि मोहिं भाई॥
कंद-तडित बिच-बिच जनु सुरपति-धनु-रुचिर बलाक पाँति चलि आई॥
कंबु कंठ, चिबुकाधर सुन्दर, क्यों कहौ दसनन की रुचि राई?
पदुम कोस महँ बसे बज्र मनो निज संग तडित-अरुन रुचि लाई॥
नासिक चारु, ललित लोचन, भ्रकुटिल, कचनि अनुपम छवि पाई।
रहे घेरि राजीव उभय मनो चंचरीक कछु हृदय डेराई॥[3]

१. दोहावली, दोहा २५७
२. गीतावली, बाल काण्ड, गीत ८२
३. गीतावली, बाल काण्ड, गीत १०६

जनक बाटिका के अन्दर मानस में जहाँ राम और लक्ष्मण को निकाल कर कवि सीता और उसकी सखियों के सम्मुख प्रस्तुत करता है वहाँ देखिये कितनी सुन्दर उत्प्रेक्षा की योजना मिलती है :

लता भवन ते प्रकट भे, तेहि अवसर दोउ भाइ।
निकसे जनु जुग बिमल बिधु, जलद पटल बिलगाइ।

धनुष-यज्ञ के अवसर पर फिर राम को देखने के लिए लज्जाशील सीता की आकृति का वर्णन देखिए :

प्रभुहि चितइ पुनि चितइ महि, राजत लोचन लोल।
खेलत मनसिज मीन जुग, जनु बिधु-मंडल डोल॥

राम के वियोग मे कौशल्या की दशा के चित्रण में उत्प्रेक्षा अलंकार की सृष्टि देखिए :

मलिन बसन बिबरन बिकल कृस सरीर दुख भारु।
कनक कलप बर-बेलि-बन, मानहु हनो तुसारु॥

उत्प्रेक्षा से पुष्ट रूपक की योजना देखिए :

होत प्रात मुनि-वेष धरि, जौं न राम बन जाहिं।
मोर मरन राउर अजसु, नृप समुझिअ मन माहिं॥
अस कहि कुटिल भई उठि ठाढ़ी, मानहुँ रोष तरँगिनि बाढ़ी।
पाप-पहार प्रगट भई सोई, भरी क्रोध-जल जाइ न जोई।
दोउ बर कूल कठिन हठ धारा, भँवर कूबरी बचन प्रचारा।
ढाहत भूप रूप तरु मूला, चली विपति वारिधि अनुकूला।

गोस्वामी तुलसीदास ने अपनी रचनाओं में अतिशयोक्ति अलंकार का प्रयोग भी कम नहीं किया है परन्तु उनका यह प्रयोग कही भी कौतूहल मात्र की सीमा में घिर कर नही रह गया है। कवि का यह प्रयोग सर्वथा ही उनके वर्ण्य-विषय में उत्कर्ष लाने के अन्दर समर्थ रहा है। यहाँ देखिए अतिशयोक्ति का भी कितना सरल प्रयोग है :

राजन राउर नाम जस सब अभिमत दातार।
फल अनुगामी महिप मनि मन अभिलाष तुम्हार॥

कवि ने प्रतिशयोक्ति के लिए जो स्थल चुने है वे बहुत ही कुशलता पूर्वक चुने गये है और उन स्थलों पर अतिशयोक्ति के प्रयोग बिना काव्य में उत्कर्ष भी आना असम्भव है। उदाहरणार्थ धनुष टूटने पर, युद्ध-स्थल पर इत्यादि। वियोग की अधिक अनुभूति के लिए भी कवि रूपकातिशयोक्ति का प्रयोग करता है। सीता के वियोग में राम का चित्रण देखिए। वह बन में सर्वत्र सीता के दर्शन करते है :

खञ्जन सुक कपोत मृग मीना, मधुप-निकर कोकिला प्रवीना।
कुन्द कली दाड़िम दामिनी, कमल सरद सहि अहि भामिनी।
बरुण-पास मनोज धनु हँसा, गज केहरि निज सुनत प्रसंसा।
श्रीफल कमल कदलि हरषाहीं, नेकु न संक सकुच मन माहीं।

नीचे हम कुछ विरोधमूलक अलंकारों के उदाहरण प्रस्तुत करते हैं :

विभावना :

बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना, कर बिनु करम करइ बिधि नाना।
आनन रहित सकल रस भोगी, बिनु बानी बकता बड़ जोगी।[1]

असंगति :

जिन्ह बीथिन्ह बिहरहिं सब भाई, थकित होहिं सब लोग लुगाई।[2]

अलंकारों की संख्या असंख्य है और यदि उनके भेद-उपभेदों में घुसा जा सके तो सम्भवतः उनसे बाहर निकलना ही कठिन हो जायेगा। कवि ने कहाँ-कहाँ किस-किस प्रकार के अलंकारों का प्रयोग किया है, यदि यह दिखलाने में लगें तो एक ग्रन्थ की रचना इसी के लिए करनी होगी। इसलिये इस प्रसंग को हम यहीं छोड़ते हैं। गोस्वामी तुलसीदास ने अलंकारों का प्रयोग अपने काव्य के उत्कर्ष के लिए किया है न कि अलंकारों के लिए काव्य की रचना की है, यह बात पाठकों को स्पष्ट रूप से समझ लेनी चाहिए। इसी लिए उनके काव्य-प्रवाह में अलंकार कहीं भी बाधा बनकर नहीं आते, बल्कि सहायक ही सिद्ध होते हैं।

कवि ने शब्दालंकारों को अपने काव्य में योजना करने का प्रयास नहीं किया परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि शब्दालंकारों का प्रयोग तुलसी-काव्य में हुआ ही नहीं। यह सच है कि चमत्कार प्रधान अलंकारों का प्रयोग कवि ने ना के बराबर ही किया है; परन्तु फिर भी इतने विस्तृत काव्य में सभी प्रकार के अलंकार कहीं-न-कहीं आही गये हैं :

रावन सिर सरोज बनचारी, चलि रघुबीर सिली मुखधारी।

उक्त पंक्ति में श्लेष का चमत्कार देखिए। शब्दालंकारों में श्लेष इत्यादि के प्रयोग का बाहुल्य तुलसी की कविता में चाहे न हो पर भाषा को कर्ण-मधुर बना देने वाले अनुप्रास की उसमें कमी नहीं है। मानस में जहाँ इच्छा हो वहाँ पकड़ लीजिये। 'अन्त्यानुप्रास' तो प्रायः प्रत्येक छंद में है ही, परन्तु 'छेकानुप्रास' भी प्रायः हर अर्द्धाली में मिल जायेगा। 'वृत्यानुप्रास' का भी कवि ने काफी प्रयोग किया है। अनुप्रासों के उदाहरण देखिए :

---

१. वही, बाल काण्ड. ११७. ५,६
२. मानस, बाल काण्ड, २०३.८

१. धर्म धुरीन धरी नयनागर, सील सनेह सत्य सुख-सागर।
२. काने खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जान।
३. मातु पिता भगिनी प्रिय भाई, प्रिय परिवार सुहृदय सुखदाई।
सासु ससुर गुर सजन सहाई, सुत सुन्दर सुसील सुखदाई।
जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते, पिय बिनु तियहि तरनिहु ते ताते।
४. देखि सीय सोभा सुख पावा, हृदय सराहत बचन न आवा।
५. कंकनि किंकनि नूपुर धुनि सुनि।
६. सुनि मृदु बचन मनोहर पिय के।
लोचन ललित भरे जल सिय के।
७. सहज सुभाय सुभग तन गोरे।
८. स्रवन सुनत सागर बंधाना।
९. तुलसी मन रंजन रंजित अंजन नैन सुखंजन जातक से।
सजनी ससि में समसील उभै नवनील सरोरुह से बिकसे॥

अकृत्रिम रूप से इसी प्रकार गोस्वामी तुलसीदास ने यमक अलंकार का भी प्रयोग किया है :

१. अस मानस मानस चख चाही, भई कबि बुद्धि बिमल अवगाही।
२. मूरिति मधुर मनोहर देखी, भयउ बिदेह बिदेह बिसेखी।

कवि की उक्तियों में अन्यत्र आप-ही-आप आजाने वाले अन्य अलंकारों में पुनरुक्तिप्रकाश, पुनरुक्तवदाभास, वीप्सा, वक्रोक्ति इत्यादि भी हैं। सभी के उदाहरण यहाँ प्रस्तुत करके ग्रन्थ को तूल देना व्यर्थ है। अन्त में तुलसी की अलंकार-योजना के विषय में यह बात न भूलनी चाहिए कि उन्होंने अलंकारों का प्रयोग बहुत ही स्वाभाविक रीति से किया है, बलात नहीं।

छंद-योजना

गोस्वामीजी ने जिन छन्दों का प्रयोग अपने काव्य में किया है उनमें न केवल मात्रा, गण, वर्ण इत्यादि का चमत्कार ही है और न छन्द-विधान की पाबन्दी ही, वरन् उनमें तो कवि ने प्रसंगानुकूल लय और ताल भी निनादित किये हैं। भावानुरूप नैसर्गिक ध्वनि को छन्दों में समा देने में जो सफलता कविवर तुलसी को मिली है वह हिन्दी साहित्य में अन्यत्र कम देखने को मिलती है। तुलसीदास छन्द-विधायक कवि थे।

मानस के प्रत्येक सोपान के आरम्भ तथा तीसरे और सातवें सोपान के अंतर्गत कवि ने विविध वृत्तों में संस्कृत-श्लोकों का प्रयोग किया है। शेष ग्रन्थ की रचना चौपाई और दोहों में हुई है। कहीं-कहीं सोरठे का भी प्रयोग किया गया है। दोहा

आठ अर्धालियों के पश्चात् आता है। यह दोहा प्रायः एक ही होता है परन्तु कभी-कभी ये दो या अधिक भी होते हैं। चौपाइयाँ भी आठ के स्थान पर दस, बारह, चौदह, सोलह, अठारह, बीस, चौबीस और छत्तीस तक आई हैं। कहीं-कहीं नौ, ग्यारह, तेरह, पंन्द्रह, उन्नीस अर्धालियों का भी प्रयोग है। दोहा और चौपाइयों के बीच कहीं-कहीं हरिगीति छन्द का भी प्रयोग कवि ने किया है।

'कवितावली' में कई प्रकार के सवैये, मनहरण, मनहर, घनाक्षरी, छप्पय और झूलना छन्दों का प्रयोग है। 'दोहावली' और 'बरवै रामायण' के छन्दों का ज्ञान इनके नाम से ही हो जाता है। दोहावली में सोरठों का भी कवि ने प्रयोग किया है। 'रामाज्ञा प्रश्न' की रचना दोहा छन्द में है। 'रामलला नहछू' की रचना सोहर छन्द में की गई है। 'वैराग्य संदीपिनी' मे दोहा, सोरठा और चौपाई का प्रयोग है। 'गीतावली', 'कृष्ण गीतावली', और 'विनय पत्रिका' में राग रागनियों की कवि ने सृष्टि की है।

इस प्रकार कवि का हम काव्य में प्रयुक्त बहुत से छन्दों पर एकाधिकार पाते हैं और जैसा हम ऊपर कह चुके है आपने विषयोपयुक्त छन्दों का प्रयोग किया है।

शब्द-शक्ति

भाव और विचार को ज्यों-का-त्यों पाठकों तक पहुँचाने के लिए किसी भी कवि या लेखक के लिए यह परमावश्यक है कि वह उन शब्दो की शक्ति को समझता हो जो उसकी भाषा में आकर विचार अथवा भावना को कवि अथवा लेखक के पास से अपने मे सिन्निहित करके पाठक के पास तक ले जाते है। यदि ये शब्द अपने कार्य में असमर्थ रहे तो कवि अथवा लेखक का प्रयोजन अधूरा ही रह जाता है, पूर्ण नहीं हो पाता।

गोस्वामी तुलसीदास का हम शब्द-शक्ति पर पूर्ण अधिकार पाते है। भाषा मे प्रधान रूप से अभिधा शक्तिमूलक शब्दों का ही प्रयोग रहता है। तुलसी का शब्द-प्रयोग अपरिवृत्तिसह है और साक्षात्सकेतित अभिधेयार्थ को ही प्रकाशित करते है। इससे कवि अपनी भावना और विचार को व्यक्त करने में पूर्ण रूप से सफल हुआ है।

जब लेखक अभिधा शक्ति-मूलक शब्दों द्वारा अपने भाव को स्पष्ट करने में कठिनाई का अनुभव करता है तो उसे लक्षणिक प्रयोगों का आश्रय लेना होता है। लक्षणा द्वारा भाव अथवा वस्तु विशेष की वक्र-व्यंजना होती है। इस प्रयोग से उसमें विशेष चारुता तथा सादृश्य और साधर्म्य की प्रवृष्टि होती है। भाव और विचार को गति प्रदान करने मे लक्षणा शक्ति चमत्कारिक कार्य करती है:

सीदत साधु, साधुता सोचति,
खल बिलसति, हुलसति खलई है।

—विनयपत्रिका, पद १३९।

उक्त पद में 'साधुता' और 'खलई' शब्दों का प्रयोग कवि ने लक्षणा के साथ किया है। 'साधुता' और 'खलई' का हुलसना कह कर कवि ने लाक्षणिक प्रयोग किया है। इन दो शब्दों द्वारा कवि का सम्बन्ध समस्त खल और साधु समाज से है। उपादान लक्षणा का यह सुन्दर उदाहरण है। लक्षणा के अन्य उदाहरण देखिए :

१. तुलसी बैर सनेह दोउ रहित बिलोचन चारि।

—दोहावली, दोहा ३२६

उक्त पंक्ति में बैर और स्नेह का लाक्षणिक प्रयोग है।

२. सुनि बिलाप सुखहू दुख लागा।
धीरज हू कर धीरज भागा।

—रामचरित मानस, अयोध्या काण्ड-१५१-८

गोस्वामीजी के लाक्षणिक प्रयोगो ने उनकी भाषा को व्यंजकता, व्यापकता और चारुता प्रदान की है। आपके लाक्षणिक प्रयोगों ने भाषा को व्यर्थ की दुरूहता प्रदान नहीं की, वरन् भावाभिव्यक्ति और विषय-विकास को सहयोग ही प्रदान किया है।

आभिधा और लक्षणा के क्षेत्र से आगे बढ़कर कवि ने व्यंजना का भी प्रयोग कम नहीं किया है :

तुम्हरे बिरह भई गति जौन।
चित दै सुनहुँ राम करुना निधि जानौं कछु पै सकों कहि हौं न।

—गीतावली, सुन्दर काण्ड, गीत २०

उक्त गीत की पंक्ति में कवि ने अभिधामूलक व्यंजना का प्रयोग किया है। एक उदाहरण आर्थी व्यंजना का भी देखिए :

सेवत तोहि सुलभ फल चारी। बरदायिनि त्रिपुरारि पियारी॥
देबि पूजि पद-कमल तुम्हारे। सुर-नर-मुनि सब होहिं सुखारे॥
मोर मनोरथ जानहु नीके। बसहु सदा उर पुर सबही के॥
कीन्हेउँ प्रकट न कारन तेही। अस कहि चरन गहे बैदेही॥

—रामचरित मानस, बालकाण्ड, २३५. १ ४

बन-गमन के समय राम और सीता के सवादों में व्यंजना की जो पुट कवि ने प्रस्तुत की है वह हिन्दी-काव्य-कानन की वह फुलवारी है जिसका अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। सीता के मुख से निकली एक ही पंक्ति में राम का सारा उपदेश समाप्त हो जाता है :

मैं सुकुमारि नाथ बन जोगू, तुम्हहि उचित तप मोहि कहँ भोगू।

इसी प्रकार कविवर तुलसीदास ने विचित्र शब्द-शक्तियों का प्रयोग किया है। आपका भाषा और उसके शब्दों तथा उनकी शक्तियों के प्रयोग पर पूर्ण अधिकार था।

काव्य-सौष्ठव

जहाँ तक काव्य-सौष्ठव का सम्बन्ध है तुलसी-साहित्य के जिन गुणों का हम ऊपर उल्लेख कर चुके है, वे सभी काव्य-सौष्ठव के अंतर्गत आ जाते हैं। परन्तु काव्य के बड़े भेदों को ऊपर प्रथक से लेकर यहाँ हम काव्य-सौष्ठव के अतर्गत प्रबन्ध-पुटता, मार्मिक स्थलों और भावनाओं का चित्रण, अप्रिय, अरोचक और निरर्थक प्रसंगों के बचाव का ही उल्लेख करेंगे।

रामचरितमानस गोस्वामी तुलसीदास का प्रधान ग्रन्थ है और यह एक प्रबन्ध-काव्य है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में कवि ने कथा के प्रबन्ध की सविस्तार प्रस्तावना प्रस्तुत की है। उसके पश्चात् राम-कथा का वर्णन भी प्रबन्धात्मकता की दृष्टि से अवर्णनीय है। राम का अवतार ही एक प्रयोजन को लेकर होता है और जन्म से पूर्व उस प्रयोजन का कवि ने उल्लेख किया है। जय-विजय इत्यादि की कथाएँ प्रस्तुत करके प्रयोजन प्रदर्शित किया जाता है। राम के साथ-ही-साथ रावण के आविर्भाव का भी पूरी तरह कवि ने कारण प्रस्तुत किया है। रावण के अत्याचारों से पृथ्वी तृस्त होती है। पृथ्वी को इस त्रास से मुक्ति प्रदान कराने के लिए राम अवतार लेते हैं।

चौथेपन तक पुत्र न होने के कारण राजा दशरथ और सभी अयोध्यावासी दुखी है। राम-जन्म का स्वागत देवताओं के साथ उनका परिवार, अयोध्या की प्रजा इत्यादि सभी लोग करते है। उनका जन्म इस प्रकार माता-पिता, परिवार, प्रजा और देवताओ की आवश्तकता की पूर्ति है, फिर क्यों न उनके जन्म पर ससीम मंगल का सागर उमड़ उठता। और कवि ने इसका चित्रण भी खूब किया है।

कथा का यह उठान साधारण नहीं है और इसका कवि ने अद्योपान्त कलात्मक और सफल निर्वाह किया है। कथा के बीच आने वाला शायद ही कोई ऐसा मार्मिक स्थल रह गया हो जिसके चित्रण में कवि को सफलता न मिली हो। अकारण अनावश्यक स्थलों को उभार कर उनका सविस्तार वर्णन करना भी कवि का स्वभाव नही रहा। व्यर्थ की भरती के प्रसंगों का कथा में समावेश कवि ने नही किया है। कथा की रोचकता बनाये रखने के लिए कवि ने कथा के मार्मिक स्थलों का ही विस्तार के साथ चित्रण किया है।

कुछ मार्मिक स्थलों में जनकपुर के अन्दर फुलवारी में राम और लक्ष्मण का सीता को देखना, धनुष-यज्ञ-वर्णन, राम-वन-गमन, राम-भरत-मिलाप, सीता-हरण

पर राम-विलाप, लक्ष्मण के शक्ति लगना इत्यादि है। इन प्रसंगों को कवि ने सविस्तार चित्रित किया है।

जहाँ कवि ने आवश्यक प्रसंगों को विस्तार दिया है, वहाँ कम आवश्यक प्रसंगों का केवल संकेत मात्र देकर ही छुट्टी लेली है। इन प्रसंगों में भरत के चित्रकूट से लौटने तथा राम के लंका से लौटने के प्रसंग इसी प्रकार के है। इसी प्रकार के अन्य बहुत से प्रसंग हैं जिन्हें कवि ने तूल न देकर पाठकों की रोचकता में बाधा उपस्थित नहीं की। जहाँ तक बन पड़ा है कवि ने अरोचक वर्णनों से अपने काव्य को मुक्त ही रखा है। अप्रिय प्रसंगों की केवल सूचना मात्र देकर ही कवि ने काम चलाया है, उन्हें विस्तार से वर्णन करना उचित नही समझा। राम-वन-गमन की बात राम से न तो दशरथ ही खुलकर कह पाय और न कैकेयी ही। कैकेयी कहती भी है तो कितने संकोच के साथ :

सुनहु राम सब कारन एहू, राजहि तुम पर बहुत सनेहू।
देन कहेंहि मोहि दुइ बरदाना, माँगेउँ जो कछु मोहि सोहाना।
सो सुनि भयउ भूप उस सोचू, छाड़ि न सकहिं तुम्हार सँकोचू।
सुत सनेह इत बचन उत, संकट परेउ नरेसु।
सकहु त आयसु धरहु सिर, मेटहु कठिन कलेसु।

इसी प्रकार कौशल्या के पास जाकर राम बन जाने की बात स्पष्ट न कह कर, कहते हैं :

'पिता दीन्ह मोहि कानन-राजू।'

अप्रिय बातों का जहाँ तक भी सम्बन्ध है कवि ने उन्हें खोल कर कहा ही नहीं, केवल संकेत मात्र किया है। मानस में इस प्रकार के बहुत से प्रसग है :

१. कही लखन कछु अनुचित बानी।

वह अनुचित बानी क्या कही यह कवि ने वर्णन नही किया।

२. लखन कहे कछु बचन कठोरा।

३. मर्म बचन सीता जब बोला।

अप्रिय और अकह्य बातों से काव्य को जहां तक भी बन पड़ा है कवि ने बचाने का ही प्रयास किया है।

कवि ने अपनी फुटकल रचनाओं में भी प्रबन्धात्मकता रखने का प्रयास किया है, परन्तु प्रबन्धात्मकता का जो कलात्मक सौदर्य मानस में आया है वह हिन्दी के अन्य किसी काव्य में विद्यमान नही है।

चरित्र-चित्रण

रामचरितमानस में कवि ने देवताओं, सिद्धों, ऋषि मुनियों, भक्तों तथा

दासों, राक्षसों और राम रूप में स्वयं परब्रह्म भगवान् का चित्रण किया है। जहाँ तक धार्मिक सिद्धांतों के आधार पर ब्रह्म, भक्त और राक्षस का विवेचन है वह हम आगे चल कर प्रस्तुत करेंगे। यहाँ हम केवल चरित्र-चित्रण तक ही सीमित रहेंगे।

मानस में ब्रह्मा और महेश देवता ; नारद और सनकादि सिद्ध ; वसिष्ठ भारद्वाज, विश्वामित्र, वाल्मीकि, शरभंग, अत्रि, अगस्त्य इत्यादि ऋषिमुनि तथा शबरी, जटायु, जामवंत, सुग्रीव, अगद, हनुमान इत्यादि भक्त और मारीच, शुक, त्रिजटा, मदोदरि इत्यादि राक्षस राक्षसियो का उल्लेख है। ये सभी प्रधान पात्रों के अतिरिक्त कथा-सूत्र में कहीं-कहीं आते है।

वसिष्ठ : वसिष्ठ सूर्यवश के पुरोहित है और राम के जातकर्म, उपनयन, विद्यारम्भ, विवाह इत्यादि संस्कार कराते है। दशरथ की मृत्यु हो जाने पर भरत को बुलाने है। भरत की ओर से चित्रकूट जाकर राम को लौटने की सलाह देते हैं। भरत को राज्य-कार्य संभालने में परामर्श देते है। राम के बनवास से लौटने पर उनका राज्याभिषेक भी यही करते है।

विश्वामित्र : यह राम को शस्त्र-विद्या सिखलाते है। जनकपुर ले जाते हैं। सीता से राम के विवाह में यह कारण स्वरूप आते है। चित्रकूट से राम को लौटाने के समय भरत के साथ यह भी थे।

भारद्वाज : प्रयाग में राम की इनसे भेंट हुई। भरत को भारद्वाज ने ही इस बात का निश्चय कराया कि राम के बन जाने में उनका कोई हाथ नही। और राम भी ऐसा ही समझते है।

बाल्मीकि : बाल्मीकि ने राम का अपने आश्रम में सत्कार किया और उन्हें चित्रकूट मे रहने का परामश दिया।

अगस्त : दण्डकवन मे राम अगस्त मुनि के परामर्श से ही रहे।

जटायु : सीताहरण के समय जटायु ने रावण से लड़कर अपने प्राण दिये। राम को यह सूचना दी कि सीता को हरकर ले जाने वाला रावण है।

शबरी : शबरी ने राम को पम्पासरोवर पर सुग्रीव से मिलने को कहा।

जाम्बवान : जाम्बवान एक कुशल सेनापति था जिसने राम की ओर से युद्ध में रावण से मोर्चा लिया। हनूमान को लंका भेजने का काम इसी का था।

सुग्रीव : सुग्रीव ने परवश सीता को वायुमार्ग से जाते देखा था। सीता ने नीचे सुग्रीव को देखकर जो वस्त्र गिराये थे उन्हें देखकर राम ने पहिचान लिया कि वास्तव मे वे सीता के ही वस्त्र थे। सुग्रीव ने चारों दिशाओं को बानर सीता की खोज के लिए भेजे। ठीक पता लगने पर उन्ही के सैनिक नल-नील ने समुद्र पर पुल बाँधा। सुग्रीव ने स्वयं भी युद्ध में भाग लिया। कुम्भकरण के नाक-कान काटे। यह

राम के विश्वासपात्र मित्र थे। राम ने इन्हें बाली को मारकर इनका राज्य तथा इनकी स्त्री दिलाई थी। मेघनाथ के वध के लिए जाते समय लक्ष्मण की सहायतार्थ जहाँ जाम्बवान और विभीषण थे वहाँ सुग्रीव भी थे।

अंगद:—अंगद को दूत बनाकर राम ने लंका में भेजा था। यह चतुर व्यक्ति था। अगद का पैर रावण की भरी सभा में कोई नही उठा सका था। रावण की बातो का आपने यहाँ मुँह तोड़ उत्तर दिया था। दूत कार्य में यह बहुत प्रवीण थे और शत्रु के गुप्त रहस्यो को जानलेने की इनमें क्षमता थी। लंका-गढ़ की स्थिति का राम को अंगद ने ही ज्ञान कराया। यह असाधारण वीर और साहसी थे। राम राज्याभिषेक के बाद जब यह अयोध्या से लौटे तो राम ने अपनी माला इन्हें पहिनाई थी।

अत्रि, शरभंग, सुतीक्ष्ण इत्यादि:—ये केवल राम के भक्त मात्र थे। कथा-प्रसार मे इनका कोई योग नही।

मारीच:—मारीच सीता-हरण में सहयोगी बना। स्वर्ण मृग बनकर इसी ने सीता को ललचाया। मरते समय छल से इसी ने लक्ष्मण का नाम उच्चारा जिससे भयभीत होकर सीता ने लक्ष्मण को भेज दिया और स्वयं अकेली रह गई।

शुक:—यह रावण का गुप्तचर था। राम की सेना के बीच जाकर इसने उनकी शक्ति का पता लगा या और रावण को जनक-सुता के लौटाने की सलाह दी।

प्रहस्त:—यह रावण का ठकुर सुहाती कहने वाला मंत्री नहीं था। इसने रावण को सलाह दी कि राम को सीता लौटा दो और सुलह की बात करो। यदि तब भी वह न माने तो डट कर युद्ध करो।

मन्दोदरी:—जब सीता ने रावण का वरण करने से स्पष्ट इंकार कर दिया तो रावण उसे मारने के लिए उद्यत हो गया। इस कठिन समय में मन्दोदरी ने ही रावण को यह नीति विरुद्ध कार्य करने से रोका। उसने राम से मेल करने और युद्ध न करने की भी सलाह दी।

त्रिजटा:—लंका में रहने के काल में त्रिजटा ही सीता के काम आयी। इसीसे सीता उसे माता कहकर सम्बोधित करती थी। सीता को बराबर धैर्य बँधाये रखने का कार्य उसी का था।

उक्त जितने भी पात्रों का उल्लेख हुआ इन सभी ने राम के चरित्र के विकसित होने में योग दिया है। ये सभी मानस के सामान्य पात्र है। अब नीचे हम तुलसी के मुख्य पात्रों को लेंगे जिनके चरित्रों में कवि ने समाज के मूल तत्वों को तिरोहित कर दिया है।

रामः—राम तुलसी के इष्ट देव भी हैं और उनकी कथा के चरित्र नायक भी। राम मानस-महाकाव्य का केन्द्र है, अमृत कोष है, जिससे सभी पात्र प्राण पाते हैं। अन्य सब पात्र राम के ही इर्द-गिर्द चक्कर लगाते हैं। तुलसी ने राम के दैवी और मानवीय दोनों रूपों का उल्लेख किया है। मानवीय रूप के साथ-ही-साथ कवि उनके दैवी रूप का भी उल्लेख करता जाता है। राम जन्म लेते ही कौशल्या को चतुर्भुज रूप में दर्शन देते हैं। माता उनसे शिशु लीला करने का अनुरोध करती है। इसके पश्चात् उनका बालरूप सामने आता है। एक बार कौशल्या उनके बाल-मुख में ब्राह्माण्ड के दर्शन करती हैं। खर-दूषण की सेना से संग्राम में युद्ध करते समय भी राम ने अपनी लीला का चमत्कार दिखलाया था उसी के फलस्वरूप उनकी सेना के योद्धा हरएक दूसरे को राम समझकर आपस में कट मरे थे। जिस समय राम सीता के विरह में बन-बन भटकते फिर रहे थे तो मार्ग में सती के सम्मुख अपना अलौकिक रूप प्रकट किया था। जब राम चौदह वर्ष पश्चात् अयोध्या लौटते हैं तो अयोध्यावासियों की मिलन उत्सुकता शांत करने के लिए 'अमित रूप' मे प्रकट होते हैं। इसमें भी राम का अलौकिक प्रदर्शन सामने आता है। इनके अतिरिक्त अन्यत्र सब जगह हम राम के चरित्र को लौकिक मर्यादाओं के अन्दर ही पाते हैं। मानवीय गुणो का समावेश ही एक आदर्श नेता के समान उनके अन्दर कवि ने किया है।

गोस्वामी तुलसीदास ने अपने चरित्र नायक राम को रूपवान, शीलवान, चरित्रवान, तेजस्वी, वीर, पराक्रमी, साहसी, बड़ो का आज्ञाकारी, स्नेहशील, दृढ़-प्रतिज्ञ और सर्वहितकारी गुणों से पूर्ण प्रदर्शित किया है। बचपन से ही राम अपने माता-पिता, बन्धु परिवार, तथा नगर के लोगों को अपने रूप और गुण से प्रभावित करते हैं। दशरथ पर उनका प्रभाव होता है :—

राम रूप गुण सील सुभाऊ, प्रमुदित होइ देखि सुनि राऊ।

राम का रूप सभी पर मोहनी डालता था :—

चरित सील रूप गुन धामा,
तदपि अधिक सुखसागर रामा।

× × × ×

जिन बीथिन्ह बिहरहिं सब भाई,
थकित होहिं सब लोग लुगाई।

विदेह पर भी उनके सौंदर्य का विलक्षण प्रभाव हुआ :—

मूरति मधुर मनोहर देखी,
भयेउ बिदेह-बिदेह बिसेखी।

विश्वमित्र भी देखकर मग्न हो जाते हैं :

भये मगन देखत सुख सोभा।

इसी प्रकार सीताजी राम के प्रथम दर्शन पाकर प्रेम-मुग्ध हो जाती हैं :

लखि रूप लोचन ललचाने, हरषे जनु निज निधि पहचाने।
थके नयन रघुपति छबि देखें, पलकन्हि हूँ परिहरी निमेषें।

राम के सौंदर्य का प्रभाव किस पर नहीं पड़ता। परुषराम 'मारमद-मोचन राम' को देखकर ठगे से जाते हैं। निषाद उनके रूप को देखता ही रह जाता है। वाल्मीकि और अत्री के नेत्र राम की शोभा को देखकर जड़ जाते हैं :

देखि राम-छबि नयन जुड़ाने।

शरभङ्ग ऋषि राम-दर्शन-से अपना जन्म सार्थक मानते हैं और उन पर भी राम के रूप का प्रभाव होता है :

देखि राम मुख-पंकज, मुनिवर लोचन भृङ्ग।
सादर पान करत अति, धन्य जन्म सरभङ्ग।

राम के रूप-सौंदर्य का प्रभाव परिवार, सम्बन्धी, परिजन, मार्गवासी, देव, ऋषि, मुनियों को छोड़कर राक्षस और राक्षसियों पर भी होता है। वे भी प्रभावित हुए बिना नहीं रहते। खर-दूषण राम के दर्शन करके अपने मंत्री से कहता है :

नाग असुर सुर नर मुनि जेते, देखे जिते हते हम केते।
हम भरि जन्म सुनहु सब भाई, देखी नहिं अस सुन्दरताई॥

शूपनखा के राम-सौंदर्य पर लुब्ध होने का क्या-क्या गुल खिलता है यह तो रामायण की कथा से ही स्पष्ट हो जाता है। वह बेचारी तो अपना दिल ही खो बैठती है। इनके अतिरिक्त मारीच, विभीषण कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं जो राम के सम्पर्क में आया हो और उसके नेत्रों ने राम के दर्शन करके अपने मन से उनके सौंदर्य का बखान न किया हो। राम का 'लोक-लोचन सुखदाता' के रूप में कवि ने चित्रण किया है। जो भी उनके दर्शन करता हो, लुभा जाता है। राम को देखकर सभी को सुख प्राप्त होता है।

जनकपुर में राम लक्ष्मण को देखकर :

निरखि सहज सुन्दर दोउ भाई,
होहिं सुखी लोचन फल पाई।

वन जाते समय :

राम लखन सिय रूप निहारी,
पाइ नयन फल होहिं सुखारी।

राम का सौंदर्य सागर अपार था, जिसमें सभी ने डुबकियाँ लगाई हैं। राम का यह रूप सभी को आकर्षित करता है। राम के गुणों में, शील में और स्वभाव में अपार आकर्षण है।

राम की प्रकृति बचपन से ही गम्भीर है। उनके खेल भी बचपन से साधारण बच्चों के से नहीं होते। उनके खेल भी राजलीलाओं के से होते हैं :

खेलहिं खेल सकल नृप-लीला।

राम खेल में भी अपने से छोटों का सर्वदा मन रखते थे। राम ने थोड़ी ही अवस्था में सब विद्याएँ सीख ली थीं :

अलप काल विद्या सब आई।

वह वेद और शास्त्रों के मर्मज्ञ थे। वह बड़ों के आज्ञाकारी थे। बड़ों का सम्मान करते थे। प्रातःकाल उठते ही :

मात पिता गुरु नावहिं माथा।

गुरुजनों की सेवा करना भी यह अपना धर्म समझते थे। विश्वमित्र के आश्रम में देखिए :

मुनिवर सयन कीन्ह तब जाई,
लगे चरन चापन दोउ भाई।

बड़ों की आज्ञा का पालन करना राम का विशेष गुण है। सीता स्वयंवर में भी राम धनुष उठाने के लिए उस समय तक नहीं उठते जब तक विश्वमित्र उन्हें आज्ञा नही देते। पिता की आज्ञा-पालन करने का तो उन्होंने आदर्श ही स्थापित कर दिया है। अयोध्या का राज्य छोड़कर वह वन का राज्य लेते हैं और प्रसन्नतापूर्वक गुरुजनों को प्रणाम करके वन को प्रस्थान करते हैं।

राम सुख-दुःख में एक से रहने वाले धैर्यशील पात्र हैं। उनका धैर्य और शील अटूट है। उनके गाम्भीर्य को कहीं पर भी ठेस नही लगती। कठिन-से-कठिन समय और परिस्थिति आने पर भी राम का साहस नहीं छूटता और वह अपने आदर्श और कर्तव्य पर दृढ़ रहते हैं :

हरष-विषाद न कछु उर आवा।

सीता के हरण और लक्ष्मण के शक्ति लग जाने पर मानवोचित विलाप और प्रलाप भी कवि ने चित्रित किया है। परन्तु उससे क्या पात्र की दृढ़ता में कोई अन्तर आता है ? वह तो कर्तव्य पर पहिले की ही भाँति आरूढ़ है। कवि ने राम को जहाँ एक ओर कुलिस से भी कठोर बताया है वहाँ दूसरी ओर सहृदयता का भी सागर उसके अंतर में हिलोरें मारता है :

कुलिसहु चाहि कठोर अति,
कोमल कुसमहु चाहि।

× × × ×

सुमरि मात पितु परिजन भाई
भरत सनेह सील सेवकाई,
कृपासिंधु प्रभु होंहि दुखारी।

उनका स्मरण करके चित्रकूट पर राम दुखित होते हैं। अयोध्या से चलते समय उनका मुस्कराता हुआ रूप अपने अन्दर किस कष्ट को छुपाये है, इसका स्पष्टीकरण यहाँ आकर होता है। भरत, माता और गुरुजनों को वन से निराश लौटते समय भी उनका हृदय भारी हो उठता है। कर्त्तव्य-परायण होने के कारण और पिता की आज्ञा को पालन करने के कारण वह अयोध्या न लौट सके :

प्रभु सिय लखन बैठि बटु छाँही,
प्रिय परिजन बियोग बिलखाहीं।

तुलसी का पात्र राम अपने दुःख में दुखी होने वाला मानव है, परन्तु जब किसी अन्य को दुःख में देखता है तो वह अपने कष्ट को भूल जाता है और उसके कष्ट-निवारण का प्रयास करता है। सुग्रीव की कष्ट-गाथा सुनकर राम द्रवित हो उठता है और अपने बल तथा नीति के प्रयोग से बाली को मारकर सुग्रीव को सिंहासनारूढ़ करता है।

कर्त्तव्य की दिशा में राम सर्वदा निर्भय और निर्मोही होकर चलता है। जब कर्त्तव्य सामने होता है तो 'जहाँ तक भी नेह और नाते' होते है वह उन सबको भुला देता है। रावण ने सीता को चुराया तो राजा का यह कर्तव्य था कि वह उसे रावण से मुक्ति दिलाये और इस कर्तव्य की पूर्ति राम ने की, अपने बल पराक्रम के प्रयोग से की और अपनी नीति-कुशलता, संगठन-शक्ति, साहस और योग्यता के बल पर की। राम और लक्ष्मण, केवल दो व्यक्तियों ने जंगल में साथी बनाकर सेना एकत्रित की और रावण को विजय करके माता सीता को मुक्त कराया। इसके पश्चात् सीता की अग्निपरीक्षा ली। सती स्त्री की समाज में मान्यता स्थापित करने का इससे सुन्दर उदाहरण और नहीं दिया जा सकता। ये दैवी आदर्शों की बातें हैं। तुलसी ने राम को कर्तव्यपरायण आदर्श मानव के रूप में चित्रित किया है। राम का जीवन मर्यादावादी आदर्शवाद का प्रतीक है।

तुलसी का राम एक उदार व्यक्ति है जो दिल का बादशाह है। उसे बादशाह बनने के लिए सल्तनत की आवश्यकता नहीं है। पिता वन का राज्य देते हैं तो वह प्रसन्नता-पूर्वक ग्रहण कर लेता है। भाई भरत के लिए अयोध्या का राज्य त्यागते हुए राम के मुख पर मुस्कराहट ही दिखलाई देती है, उसे तनिक भी कष्ट नहीं है। सुग्रीव के लिए बाली को राम मारते हैं और उसका पूर्ण राज्य उदारतापूर्वक सुग्रीव को दे देते हैं। इसी प्रकार लंका का राज्य भी वह विभीषण को देकर वहाँ के राजा और वहाँ की प्रजा को अपनी उदारता से अपना दास[1] बना लेते हैं। किसी का राज्य हड़पने की राम को लालसा नहीं। उसके मन में कहीं भी मोह पैदा होता ही नहीं।

बड़ों का आदर करने की भावना तो राम में इस कदर है कि कुछ पूछो ही नहीं। अहम भाव तो मानो उसे छू तक नहीं गया। उसने दनुजों पर विजय प्राप्त की तो उस बल-पराक्रम का श्रेय भी उन्होंने गुरु वशिष्ठ को ही सादर समर्पित कर दिया है :

गुरु वसिष्ठ कुल पूज्य हमारे,
इन्ह की कृपा दनुज रन मारे।

राम अपने साथियों को उचित आदर देता है और अपने किसी भी कार्य की सिद्धि वह केवल अपने पराक्रम के फलस्वरूप नहीं मानता। हनुमान जब राम को सीता का पता देते हैं तो राम कृतज्ञता प्रकट करते हुए अपने को उनका ऋणी मानते हैं।

राम का पात्र एक स्त्री-व्रतधारी है, जिसकी कल्पना में इस संसार के अन्दर एक ही स्त्री से उनका सम्बन्ध स्थापित हो सकता है। उसके स्वप्न, प्रत्यक्ष और परोक्ष में केवल सीता की ही कल्पना स्थिर होती है। सीता के दुबारा बनवास होने पर धनुष यज्ञ के समय राजा के साथ उसकी रानी का स्थान सीता की स्वर्ण मूर्ति को दिया जाता है। आदर्श की पराकाष्ठा है। शूपर्णखा का सौंदर्य राम को अपनी ओर आकर्षित न कर सका। राम इस दृष्टि से भारतीय संस्कृति का आदर्श पति है।

राम को अपने परिवार की प्रतिष्ठा पर गर्व है :

रघुबंसिन्ह का सहज सुभाऊ,
मन कुपंथ पग धरहिं न काऊ।

---

१. 'दास' शब्द का प्रयोग हम तुलसी की दास्य-भक्ति-भावना से अनुप्राणित मत के लिए कर रहे हैं।

राम के हृदय में कोमलता थी, दया थी, वीरता थी, दृढ़ता थी, कर्त्तव्य परायणता थी, योग्यता थी, बुद्धिमत्ता थी, नीति थी और अच्छे-बुरे को समझने की क्षमता थी। कठिन से कठिन समय पर भी आदर्श और कर्त्तव्य को निभाने की वह महान् वृत्ति थी कि जिसे जीवन में सर्वदा ही सफलता मिली। राम का सम्पूर्ण जीवन कर्त्तव्य की कसौटी पर कसा गया है। बड़ा भाई होने के नाते राज्य-सम्बन्धी जिम्मेदारियों को निभाने की उसमें क्षमता थी। पिता के बनवास देने पर जंगल को मंगल बनाने और रावण तथा बाली जैसे वीरों को मारकर विभीषण और सुग्रीव जैसे अपने भक्तों को उनके स्थानों पर स्थापित करने की उनमें क्षमता थी। चौदह वर्ष पश्चात् वन से लौटे तो उनका भाई भरत अयोध्या से बाहर आकर उनका स्वागत करता है। उनका राज्याभिषेक होता है और वह राम-राज्य स्थापित करते है।

राम तुलसी का वह शक्तिशाली पात्र है कि जिसके गुणों पर रीझकर कवि को उसमें परब्रह्म की शक्ति दिखलाई देती है। राम ने अपनी शक्ति का प्रयोग लोक-रक्षा के लिए किया है। चित्रकूट पर जगह-जगह 'अस्थि समूह' देखकर और ऋषि मुनियों से उसका रहस्य जानकर वह प्रण करते हैं कि वह भूमि को निशाचर-विहीन करेंगे। देव, दनुज और बाणासुर तथा रावण जैसे योद्धाओं से न टूटने वाले धनुष को राम इस प्रकार तोड़ डालते है मानो वह कोई कठिन कार्य ही नहीं है। परशुराम भी उनकी शक्ति सत्ता के नीचे दब जाते हैं। खरदूषण की सेना पर विजय प्राप्त करना और रावण जैसे शक्तिशाली राजा के यहाँ से विजयी होकर सीता को लाना राम का ही काम था।

राम सहनशील और गम्भीर व्यक्ति थे। परशुराम और रावण के अहंकार को चूर्ण करके भी कभी उनके अन्दर हमें अहंकार की रेखा दिखलाई नहीं देती। आपत्ति काल सें अविचल रहकर कर्तव्य को निभाने वाला यह वीर था। राम का चरित्र भावनात्मक चरित्र नहीं है, कर्त्तव्य उसकी कसौटी रहता है। अश्वमेध यज्ञ में राजाराम की सहधर्मिणी सीता की अग्निपरीक्षा के आदर्श को देखकर राम के दृढ़ व्रत के समक्ष कौन वह विचारक तथा पति है जो नतमस्तक न हो उठेगा।

भरत—राम के पश्चात् मानस में हमारे सामने भरत का चरित्र आता है, जो एकांगी होने पर भी [illegible] को आद्योपांत निभाकर चलता है।

तुलसी का भरत राम-भक्त है, पिता-भक्त है और इसी नाते जब वह अपनी सगी माता को उनके प्रतिकूल पाता है और उसके फलस्वरूप वह देख चुका है कि

लक्ष्मण—लक्ष्मण के चरित्र का भी एक ही पहलू है, एक ही दृष्टिकोण है और वह है आँखें भींचकर भाई के पीछे चलना, अपने दिमाग का बहुत कम प्रयोग करना। लक्ष्मण बाल्यावस्था से ही राम पर आत्म-समर्पण कर देता है। उसका राम में सहज स्नेह था। राम के संकेत पर चलना उसने सीखा था और इसी में वह निपुण था। रामाज्ञा के सामने उसका मस्तिष्क कुछ सोच ही नहीं सकता था।

स्वभाव से लक्ष्मण आवेश में आ जाने वाला था। वह किसी का क्रोध सहन नहीं कर सकता था। परशुराम के क्रोध-पूर्ण शब्दों को सुनकर उसका खून खौला, परन्तु रामाज्ञा के शीतल छींटें ने उसे शांत ही बनाये रखा।

राम को बनवास होता है तो लक्ष्मण बड़े भाई और भाभी की सेवा के लिए वन को साथ जाता है। उनकी सेवा में त्यागी लक्ष्मण अपने जीवन का यौवन-स्त्री को भुलाकर काट देता है। बड़े भाई की हर आज्ञा का पालन करता है। युद्ध में शक्ति खाकर बेहोश होता है तो वही मेघनाद को, जिसे कोई विवाहित व्यक्ति नही मार सकता था, रण में मृत्यु के घाट उतारता है। वह विवाह होने पर भी ब्रह्मचारी है। लक्ष्मण एक वीर योद्धा है जो राम की आज्ञा पाकर पहाड़ से टकरा सकता है, समुद्र को पाट सकता है और अमिट को मिटा सकता है। उसकी शक्ति को राम जानता है। सीता की अग्निपरीक्षा के लक्ष्मण विरुद्ध था, परन्तु रामाज्ञा के सामने वह कुछ नहीं कह सकता।

दशरथ—दशरथ पौराणिक कथा के आधार पर पहिले जन्म के मनु थे। उन्होंने तप किया और सिद्धि प्राप्त की। भगवान् से इन्होने वरदान में उन्हीं के समान पुत्र माँगा।

दशरथ के प्राण राम में टिके हुए थे। कैकेई के वरदान माँगने पर भी दशरथ ने उसे समझाकर कहा कि 'तू भरत के लिए राज्य माँग ले परन्तु राम को बनवास न माँग।' जब कैकेयी किसी प्रकार न मानी तो वह कहते हैं :

काहे करसि निदान।

कैकेयी को अपने प्रण पर दृढ़ देखकर राजा दशरथ बेचैन हो उठते हैं :

राम-राम रट विकल भुआलू,
मनि बिहीन जिमि व्याकुल व्यालू।

सुमन्त के लौटने तक वह राम के लौटने की राह देखते हैं। परन्तु जब वह नहीं लौटते तो दशरथ का इतनी लम्बी अवधि के लिए जीवित रहना असम्भव हो गया :

राम-राम सिय लखनु पुकारी। परेउ धरनि तल व्याकुल भारी।

इस प्रकार दशरथ राम-विरह में ही अपने प्राण त्याग देते हैं।

दशरथ के जीवन का दूसरा दृष्टिकोण यह भी है कि यह पात्र अपनी 'रघुकुल रीति सदा चलि आई, प्राण जाएँ पर वचन न जाई।" वाली लीक को भी छोड़कर चलने वाला नहीं है। उसी पर चलना वह अपना कर्त्तव्य समझते हैं। स्त्री को दिये गए वचन वह अवश्य पालन करते हैं और इस प्रकार परिवार का रास्ता ही बदल जाता है। दशरथ के पुत्र में कवि ने पुत्र-प्रेम और व्रत-पालन के बीच जिस संघर्ष का चित्रण किया है, वह मनोविज्ञान की दृष्टि से बहुत ही उत्कृष्ट श्रेणी का हुआ है। पुत्र-प्रेम में दशरथ अपने कुलदेव सूर्य से प्रार्थना करते हैं कि हे देव ! तुम आज उदय ही न हो, जिससे सवेरा न हो और राम वन को न जायें। अन्त समय तक दशरथ के मुख से राम के वन जाने की बात नही निकलती। दशरथ का चरित्र एक कर्त्तव्य-परायण राजा तथा पिता का है।

सीता—राजा जनक की पुत्री सीता का राम के साथ विवाह होता है। स्वयंवर में राम शिव-धनुष को तोड़कर सीता-स्वयम्बर में उन्हें प्राप्त करते है। सीता का रूप और उसके गुण सभी को आकृष्ट करते है। वह ब्याह कर अयोध्या आती है तो राम को बनवास मिलता है। सीता को बनवास नहीं दिया गया परन्तु वह राम के बिना यहाँ महलों में रहकर आनन्द का जीवन नहीं बिता सकतीं। कौशल्या सीता को सब प्रकार रोकने का प्रयास करती है, परन्तु सीता किसी प्रकार भी तैयार नहीं होती। राम सीता को वन की भयानकता का ज्ञान कराते हैं और उस भयानकता से संघर्ष करने के लिए सीता को सुकुमारि कहते हैं :

भूमि सयन, बलकल बसन, असन कंद फल मूल।
तेकि सदा दिन मिलहिं सबइ समय अनुकूल॥
नर अहार रजनीचर चरहीं। कपट वेष बिधि कोटिक करहीं॥
लागई अति पहार कर पानी। बिपिन बिपति नहिं जाइ बखानी॥
ब्याल कराल बिहँग बन घोरा। निसिचर निकर नारि नर चोरा॥
डरपहिं धीर गहन सुधि आये। मृगलोचनि तुम्ह भीरु सुभाये॥
हंस गवनि तुम्ह नहिं बन जोगू। सुनि अपजसु मोहिं देइहि लोगू॥

राम के ये वचन सुनकर सीता के नेत्रों में जल उमड़ आता है। वह बरबस आँसुओं को रोककर सास कौशल्या के पैर छूकर कहती है :

छमबि देवि बड़ि अविनय मोरी।
दीन्हि प्रानपति मोहि सिख सोई, जेहि विधि मोर परम हित ई
मैं पुनि समुझि दीखि मन माहीं, पिय-बियोग सम दुख जग नाहीं॥

जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते। पिय बिनु तियहि तरनिहु ते ताते ॥
तन धन धाम धरनि पुरराजू। पति बिहीन सब सोक समाजू ॥
भोग रोग सम भूषण भारू। जम-जातना-सरिस संसारू॥
प्रान नाथ तुम बिन जग माहीं। मो कहँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं ॥

सीता राम के साथ वन को जाती है और सहधर्मिणी होना सार्थक करती है। किसी का भी समझाना-बुझाना उसे पति-सेवा से नहीं रोक पाता। लाड़-प्यार में पत्नी सीता भी सुख, भोग, महल, आभूषण तथा राजकीय ठाठ-बाट से उसी प्रकार उदासीन हो जाती है जिस प्रकार राम।

रावण द्वारा चुराई जाने तथा भयभीत की जाने पर भी सीता अपने दृढ़ पातिव्रत धर्म को नही छोड़ती। अग्निपरीक्षा में निर्मल-स्वर्ण के समान वह दमकती हुई बाहर निकलती है। सीता एक आदर्श भारतीय नारी है, जिसने अपने जीवन का सर्वस्व अपने पति-देवता के चरणों मे समर्पित कर दिया है। सीता का जीवन त्याग और तपस्या का जीवन है।

कौशल्या—राम की माता कौशल्या का चरित्र बहुत निर्मल है। वह दशरथ के चारों बेटों को एकसा प्यार करती है। राम-वनवास की बात सुनकर वह भयातुर होती है। परन्तु तुरन्त धैर्य धरकर उस आपत्ति को सहन करने के लिए उद्यत हो जाती है। कर्त्तव्यपरायण कौशल्या कोई भी शब्द ऐसा नही निकालती कि जो प्रेम के आवेश में आकर दशरथ की मर्यादा को ठेस पहुँचाये। राम माता से आकर कहते हैं :

पिता दीन्ह मोहि कानन राजू। जहँ सब भाँति मोर बड़ काजू ॥
आयसु देहि मुदित मन माता। जेहि मुद मंगल कानन जाता ॥
जनि सनेह बस डरपसि भोरे। आनँदु अंब अनु ह तोरे ॥

कितने सरल स्वभाव से राम ने वन-गमन की बात कही परन्तु यह बात कौशल्या के हृदय में तीर के समान लगती है :

बचन बिनीत मधुर रघुबर के। सर सम लगे मातुउर करके ॥

× × × ×

कहि न जाइ कछु हृदय विषादू। मनहु मृगी सुनि केहरि नादू ॥

यह समाचार पाकर। कौशल्या का हृदय विदीर्ण हो जाता हैवह ससझ नहीं पाती कि आखिर दशरथ ने यह सब क्यों किया। तब सचिव-सुत राम के सकेत पर सब बात समझाकर कहता है। कौशल्या सब कुछ सुनकर भी धैर्य नही खोती और दृढ़ व्रत धारण करके कहती है;

अध्याय ५

तुलसी का आध्यात्मिक तत्वनिरूपण

दार्शनिक दृष्टिकोण

गोस्वामी तुलसीदास जी के दार्शनिक दृष्टिकोण पर विचार करने के पूर्व अन्य विद्वानों द्वारा उस पर डाले गए प्रकाश पर एक दृष्टि डाल लेना उचित होगा। गोस्वामी जी के दार्शनिक दृष्टिकोण को स्वतन्त्र विचार से परखने का प्रयास हमें कम विद्वानों में मिलता है। अधिकांश विद्वानों ने पहिले एक धारणा बना ली है और फिर तुलसी-साहित्य के अन्दर अपने मत की पुष्टि के भाग खोज-खोजकर उन्हें बल देने का प्रयास किया है। उन विद्वानों का यह प्रयास चाहे उनके मत की पुष्टि में कितना ही बड़ा योग क्यों न दे सका हो परन्तु इससे कवि के दृष्टिकोण तक पहुँचने में कहाँ तक योग मिला है यह कहना कठिन है। इस प्रकार के विद्वानों के कुछ उद्धरण राजपति दीक्षित जी ने अपनी पुस्तक 'तुलसीदास और उनका युग' में इस प्रकार दिए हैं :

"दावे के साथ कहा जा सकता है कि शंकर-अद्वैत के विरुद्ध पड़ने वाले साम्प्रदायिक विचार रामायण में हैं ही नहीं।"[1]

—महामहोपाध्याय गिरधर शर्मा

"रामायण में कई जगह शंकराचार्य का मत ग्रहण किया गया है।"[2]

—प्राच्य विद्यार्णव नगेन्द्र वसु

"मानस की अंतरंग और बहिरंग परीक्षा करने का यही फल मिला है कि गोस्वामी जी का दार्शनिक विचार विशुद्ध अद्वैतवाद ही है।"[3]

—रामायणी विजयानन्द त्रिपाठी

बाबू श्यामसुन्दरदास जी तुलसी के दर्शन को अद्वैत से मिलता-जुलता मानते

---

१. 'तुलसी ग्रन्थावली' तृतीय खण्ड, पृ० १२७।

२. 'हिन्दी विश्वकोष' भाग ९, पृ० ६८६।

३. 'कल्याण' जुलाई १९३७—लेख गोस्वामी श्री तुलसीदास के दार्शनिक तत्व।

हैं। डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल का भी यही मत है। 'गोस्वामी जी को मायावाद और शंकराचार्य के मायावाद में भेद दिखलाई देता है। शंकराचार्य माया का अस्तित्व ही नहीं मानने किन्तु तुलसी राम के बल पर उसका अस्तित्व मानते हैं।'[१]

"पारमार्थ-दृष्टि से, शुद्ध ज्ञान दृष्टि से तो अद्वैत मत गोस्वामी जी को मान्य है, परन्तु भक्ति के व्यावहारिक सिद्धान्त के अनुसार भेद करके चलना वे अच्छा समझते हैं।"[२]

—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

डा० बलदेव प्रसाद जी को भी यह कथन मान्य है।

"यों तो गोस्वामी जी की सामान्य बुद्धि सभी दार्शनिक सिद्धान्तों में अविरोध देखती है, सभी को यथा स्थान महत्त्व देती है और सभी पक्षों का समर्थन करती है, पर उनके प्रस्थान के अनुरोध तथा ग्रन्थ के उपक्रम तथा उपसंहार के विचार से द्वैत सिद्धान्त और भक्ति-पक्ष में ही उसका (दार्शनिक दृष्टिकोण का) पर्यवसान प्रतीत होता है।"[१]

—पं० केशव प्रसाद मिश्र

राजपति दीक्षित जी द्वारा संकलित उक्त उद्धरणों को देखकर स्पष्ट पता चल जाता है कि इन महानुभावों ने अपने मत की पुष्टि-मात्र के लिए कुछ कवि की पंक्तियों को चुनने का प्रयास किया है। कवि की स्वतन्त्र विचारधारा, समन्वयवादी विचारधारा, भारतीय दर्शन के बिखरे हुए विचारों को एक सूत्र में पिरोने की विचारधारा की ओर ध्यान नहीं दिया। हम राजपति जी के मत से यहाँ सहमत है कि कवि-सम्राट तुलसी किसी दार्शनिक सिद्धान्त विशेष से अपने को बाँधकर जड़ कर देने वाला विचारक नही था, उसने सभी सिद्धान्तों को एक विचारक के नाते निरखा-परखा है। किसी विशेष साम्प्रदायिक मान्यता का आँखें बंद करके प्रतिपादन नहीं किया।

तुलसी ने स्वतन्त्र रूप से प्राचीन शास्त्रोपलब्ध सामग्री की सहायता से जीव, ब्रह्म, इनके पारस्परिक सम्बन्ध, माया और ब्रह्म इत्यादि के विषय में चिंतन किया है और फिर उनका स्पष्टीकरण भी उनके साहित्य में मिलता है। गोस्वामी जी ने अपने काव्य के छन्दों में दर्शन के नीरस और गहन विषय को इस सादगी के साथ भर दिया है कि साधारण जनता तक को उनके समझने में कठिनाई नहीं होती। तुलसी का काव्य जन-जन की वाणी बन सका इसका मुख्य कारण कवि की सरल सादगी और सुन्दर ढंग से अपनी बात को कह जाने की क्षमता ही है।

१. 'गोस्वामी तुलसीदास'—अध्याय १३।
२. 'तुलसी ग्रन्थावली' तृतीय खंड, पृ० १४५
३. 'कल्याण' मानसांक, खण्ड २, पृ० ९७७

परमात्मा का निरूपण

सच्चिदानन्द स्वरूप, समस्त जगत् को नचाने वाले परब्रह्म, अमोघ शक्ति-सम्पन्न, सर्व-व्यापक, अखण्ड, अनन्त, सब हृदयों में वास करने वाले, अविनाशी, अजर, अमर, सत, चित, आनन्द-कन्द-भगवान् का जो रूप गोस्वामी तुलसीदास ने चित्रित किया है उसमें महानता, शक्ति, प्रेम, आदर्श और कर्त्तव्य तथा सौंदर्य की पराकाष्ठा है। कोई कार्य नहीं जिसे वह कर नहीं सकता; करना क्या, जिसकी कृपा को पाकर कठिन से भी कठिन कार्य सरल और असम्भव-से-असम्भव कार्य सम्भव हो जाता है :

मूक होइ बाचाल पंगु चढ़इ गिरिबर गहन।
जासु कृपा सो दयाल द्रवउ सकल कलि-मल-दहन॥

गोस्वामी जी ने दशरथ-पुत्र राम को परब्रह्म के रूप में देखा है। उन्होंने राम नाम का भी महत्त्व गाया है और राम रूप, गुण तथा उसकी महिमा का असीम वर्णन किया है। राम की महिमा अपरम्पार है, जिसका बखान करते-करते कितने ही ऋषि मुनि हार गये और वेदों को भी उसका पार नहीं पाया :

'निगम सेष सिव पार न पावा।'

विनयपत्रिका में कवि ने परब्रह्म भगवान् राम की महानता, महिमा और विनय का जैसा सुन्दर चित्रण किया है वह अपनी समानता नहीं रखता। काव्य के मुख से तुलसीदास जी कहलाते है :

निरुपम न उपमा आन राम समान राम निगम कहै।
जिमि कोटि सत खद्योत सम रबि कहत अति लघुता लहै॥
एहि भाँति निज-निज मति बिलास मुनीस हरिहिं बखानहीं।
प्रभु भाव गाहक अति कृपालु सप्रेम सुनि सुख मानहीं॥

गोस्वामी तुलसीदास ने ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनों को माना है, सभी अवतारों को माना है और माना है कि इन सभी में परब्रह्म की महान् सत्ता निवास करती है या यों कहिये कि इनके रूप में स्वयं परब्रह्म ही लीला करते हैं। आपके विचार से निर्गुण राम और दशरथ-पुत्र राम में कोई अन्तर नही था। जो लोग इन दोनों में भेद-भाव स्थापित करते हैं उन्हें तुलसीदास जी ने अज्ञानी और पाखण्डी कहा है :

'पाखंडी हरि पद बिमुख जानहिं झूठ न साँच।'

राम का मनुज रूप कवि ने इतना मोहक प्रस्तुत किया है कि उसपर मोहित होकर रीझने वाले न केवल उसके गुरु जन, माता, पिता, बन्धु-बान्धव, पुरवासी तथा

बनवासी ही हैं वरन् शत्रु भी उनके गुणों की सराहना किए बिना नहीं रह सकते। ब्रह्म के इस मनुज स्वरूप पर सती भी मोह-ग्रस्त हो उठी, जयन्त राम का बल देखने को रीझ उठा, राम को नागपाश से मुक्त करके स्वयं गरुड़ जी भी भ्रम में पड़ गये। तुलसीदास जी भगवान् और भगवान् के अवतारों में भेद-दृष्टि नहीं रखते, उन्हें समान समझते हैं। भवसागर को पार करने का सरल मार्ग कवि ने बतलाया है :

राम कहत चलु राम कहत चलु, राम कहत चलु, भाई रे।
तुलसीदास भवत्रास हरहु अब, होहु राम अनुकूला रे।

राम की महिमा में कवि कहता है :

ऐसो को उदार जग माहीं ?
बिन सेवा जो द्रवै दीन पर राम सरिस कोउ नाहीं॥

जीव का निरूपण

गोस्वामी जी ने जीव को मन, प्राण और बुद्धि से प्रथम माना है। वह चैतन्य और कभी नाश न होने वाला है। जीव-स्पष्टीकरण के लिए राजपति दीक्षित जी की खोजी हुई कुछ गोस्वामी जी की पंक्तियाँ नीचे दी जाती है।

'छिति जल पावक गगन समीरा।
पंचरचित अति अधम सरीरा॥
प्रगट सो तनु तव आगे सोवा।
जीव नित्य केहि लगि तुम रोवा॥
—मानस, किष्क० १०-४-५

विनयपत्रिका का एक पद देखिए :

'निज सहज अनुभव रूप तव खल भूलि चलि आयो तहाँ।
निर्मल निरंजन निर्विकार उदार सुख तै परि हरयो॥
—विनयपत्रिका—पद १३६ (११)

निर्विकार जीव के विशुद्ध स्वरूप में उसके स्वतन्त्र कर्म और विकारी वस्तुओं से सम्पर्क विकार उत्पन्न करते हैं। जो जीव उनसे प्रभावित नहीं होते वे संसार में कमल के समान है और उन्हें सांसारिक माया अपने वश में नहीं कर सकती।

जीव की अनेकरूपता और एकरूपता पर तुलसीदास ने काफी प्रकाश डाला है। बद्ध, मुमुक्षु और मुक्त—ये जीव के तीन भेद कवि ने माने है। मानस में तीनों प्रकार के जीवों के दृष्टान्त देखने को मिलते है। सुख-दुःख जीव को उसके कर्मों के अनुसार मिलता है :

"जो जस करइ सो तस फल चाखा।"

जीव और ईश्वर का सम्बन्ध—जीव परतंत्र है और ईश्वर स्वतन्त्र। जीव को माया के हाथों में नाचना होता है और ब्रह्म माया का खेल करता है, उसे संचालित करता है। तुलसीदास ने जीव को ईश्वर का साथी कहा है :

"ब्रह्म जीव सम सहज सँघाती।"

जीव ईश्वर का सखा है, दास है और उसका नादान बच्चा भी है। जीव मायाधीश नही हो सकता यही उसका ईश्वर से सबसे बड़ा भेद है। जीव को ईश्वर के द्वारा ही संचालित होना पड़ता है। यह सत्य है कि कर्म द्वारा जीव के आवागमन की बात निश्चित हो जाती है परन्तु फिर भी ईश्वर का स्थान संचालक के रूप में अथक ही ठहरता है।

जगत-निरूपण

गोस्वामी तुलसीदास जी जगत् को ज्ञान-मार्गियों की भाँति झूठा और अनित्य नहीं मानते थे। जगत को मिथ्या कहकर जीवन को बंधन भी उन्होने घोषित नहीं किया। उन्होंने जीवन को आत्मा का कर्त्तव्य-क्षेत्र माना है जिसमें वह भगवान् की सेवकाई कर सके। जीवन क्लेशपूर्ण उन्हीके लिए है कि जिन्होंने जीवन में राम को नही पहचाना। जग-मिथ्यावादियों के लिए कवि कहता है :

'झूठो है, झूठो है, झूठो सदा जग संत कहत जे अन्त लहा है।
ताको सहै सठ संकट कोटिक काढ़त दंत करंत हहा है।
जानप नीको गुमान बड़ो तुलसी के बिचार गंवार महा है।

—वही, बा० ६९

जगत् के विषय में गोस्वामी जी उत्तर काण्ड में लिखते है :

अव्यक्त-मूल-मनादि तरु त्वच चारि निगमागम भने।
षट कंद साखा पंच बीस अनेक परन सुमन घने॥
फल जुगल बिधि कटु मधुर बेलि अकेलि जेहि आश्रित रहे।
पल्लवत फूलत नवल नित संसार बिटप नमा महे॥

जीवात्मा जगत् में रहकर यदि परमात्मा को पहिचान लेती है तो उसे विश्व के कण-कण में परमात्मा की अमर ज्योति जगमगाती हुई दिखलाई देती है। उसके लिए तो सारा जगत् ईश्वरमय हो जाता है। भगवान् का भक्त जगत् में रहकर जगत् की सभ्यता का अनुभव करता है और यहीं पर उसे भगवान् की लीलाएँ दिखलाई देती हैं :

अनबिचार रमनीय सदा, संसार भयंकर भारी।
सम संतोष दया बिबेक में व्यवहारी सुखकारी ॥

—विनय-पद १२१

गोस्वामी तुलसीदास जी राम और जगत् का एकीकरण करते हैं। उन्हें तो इन दोनों में कोई भेद ही दिखलाई नहीं देता। भेद उन्हीं लोगों को दिखलाई देता है जो प्राणी जगत् के मर्म को समझने मे अनभिज्ञ है।

माया का निरूपण

गोस्वामी जी ने अहंकार को माया का मूल माना है। 'मैं' और 'मेरा' तथा 'तू' और 'तेरे' में ही माया का समस्त रहस्य छिपा हुआ है। यही पारस्परिक अज्ञान और भेद-भाव का मूल कारण है। यदि इस भेद-भाव को दूर कर के विचार किया जाये तो माया का आवरण आप-से-आप फट जाता है। रामचन्द्र जी माया का स्पष्टीकरण लक्ष्मण के सामने इस प्रकार करते है :

मैं अरु मोर तोर तें माया। जेहि बस कीन्हें जीव निकाया ॥
गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई ॥
तेहि कर भेद सुनहु तुम सोऊ। विद्या अपर अविद्या दोऊ ॥
एक दुष्ट अतिसय दुख रूपा। जा बस जीव परा भव-कूपा ॥
एक रचइ जग गुन बस जाके। प्रभु-प्रेरित नहिं निज बल ताके ॥

इस प्रकार माया के दो रूप विद्या और अविद्या के कारण बनते हैं। एक जीव को भ्रम में डालती है तथा दूसरी भगवान् राम द्वारा प्रेरित होकर जगत् का सृजन करती है। 'सीता' राम की माया का यही दूसरा रूप है जो रामाज्ञा से संसार का सृजन और पालन करती है।

स्रुति-सेतु-पालक राम तुम्ह जगदीस माया जानकी।
जो सृजति जग, पालति, हरति रुख पाइ कृपानिधान की ॥

—मानस, अयोध्याकाण्ड १२५

माया का विद्या स्वरूप भक्तों में भगवान् के चरणारविन्द के प्रति अनुरक्ति उत्पन्न करता है। भक्त में उत्तरोत्तर सेवा की भावना का दृढ़ रूप राम की माया के फलस्वरूप ही पैदा होना है। बिना राम की अनुकम्पा के तो कुछ भी सम्भव नहीं है। अविद्या रूपी माया के प्रभाव में पड़कर जीव कभी भी 'हरि सेवकाई' की ओर अग्रसर नही हो सकता। प्रभु-भक्ति की प्रेरणा विद्या से ही मिलती है :

'प्रभु-प्रेरित व्यापइ तेहि विद्या'

—मानस—उत्तर काण्ड—७८-२-३

सीता स्वरूपा माया से कवि की प्रार्थना देखिये :

कबहुँक अब अवसर पाइ,
मेरिओ सुधि द्याइबी कछु करुन कथा चलाई ॥
दीन सब अंगहीन खीन मलीन अघी अघाइ ॥
× × ×
जानकी जगजननी जन की किये वचन-सहाइ ।
तरें तुलसीदास भव तव-नाथ-गुनगन गाइ ॥

—विनय पत्रिका—पद ४

जहाँ एक ओर कवि ने विद्या माया का इस प्रकार निरूपण किया है वहाँ अविद्या माया के प्रकोप और उसकी शक्ति से भी वह अपरिचित नही है। वह जानता है कि संसार में अविद्या माया की प्रचंड कटक फैली हुई है। काम उस सेना का सेनापति है और दंभ, कपट, पाखंड इत्यादि उसके शूरवीर हैं। इनके प्रकोप से बचने के लिए जीव को राम-भक्ति की ही आवश्यकता है। ये कपट के शूरवीर मनुष्य को अधःपतन की राह पर घसीटकर ले जाते है। माया के इस प्रभाव से नारद-मुनि और सनकादि भी नहीं बच पाए तो भला साधारण जीवों की उसके सम्मुख कैसे गति हो सकती है। यह माया अपने छल को फैलाकर ऐसी मोहनी डालती है कि आत्मा उसमें वशीभूत होकर अपने लक्ष से विमुख हो जाती है। क्रोध, लोभ फैलाकर यह आत्मा की शान्ति भंग करती है, रूप लावण्य की छटा दिखाकर वह वासना को उत्पन्न करती है, जिसके चंगुल मे भोले-भाले जीव फँसते चले जाते हैं। ऐश्वर्य भी माया का ही विकृत स्वरूप है जो अपने मद में मनुष्य को प्रवाहित करके ले जाता है और उसकी आँखों के सामने से असलियत को छिपा देता है।

अविद्या माया के इस जाल-जंजाल से वे ही प्राणी मुक्त हो सकते हैं जो परमात्मा, जीव और प्रकृति के अभेद-स्वरूप को समझ सकें। भगवान् के सगुण और निर्गुण रूप में भेद करने वाले भी माया के बन्धनों से छुटकारा नहीं प्राप्त कर सकते।

इस प्रकार गोस्वामी जी ने माया के दो स्वरूपों को लिया है, एक उसका विद्या स्वरूप और दूसरा अविद्या स्वरूप।

साधन-निरूपण

गोस्वामी जी के साधन-मार्ग के मूल में सद्गुण और सदाचार विशेष रूप से आते हैं। वर्णाश्रम धर्म में कवि को आस्था है, वेदाध्ययन, त्याग, इन्द्रिय-निग्रह, भय का निराकरण, राम के प्रति आत्म-समर्पण, सरल व्यवहार, स्वातन्त्र्य विचार

गुरु तथा शास्त्रों में आस्था, ये भी सब साधन-मार्ग पर अग्रसर होने के लिए आवश्यक है। यह मार्ग संकुचित नहीं है, विश्व जनीन है। यों प्रतिष्ठा इसमें उन सभी साधनों की है जिनके द्वारा राम-प्राप्ति के साधन खोजे गये हैं परन्तु कवि विशेष रूप से आस्था रखता है, अर्थात्, तप, समाधि इत्यादि। परन्तु राम-प्राप्ति के मूल मंत्र के रूप मे भगवदनुग्रह को ही ग्रहण किया गया है। इसीलिए कवि ने स्पष्ट लिख दिया है कि ये सभी साधन उस समय तक व्यर्थ हैं जब तक राम-कृपा प्राप्त नहीं होती। इस कृपा को प्राप्त करने के लिए कवि ने सेवा-भावना को ही अपनाने पर बल दिया है :

'सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिय उगारि।'
भजहु राम पद पंकज अस सिद्धांत बिचारि॥

—वही, उ० ११६

सारांश

गोस्वामी तुलसीदास जी का जहाँ तक दार्शनिक चिंतन का विषय है वह किसी भी वाद के पीछे रूढ़ियों में फँसकर नहीं चले। उन्होंने तो भारतीय दर्शन का पूरी तरह अध्ययन करके अपनी समन्वय नीति का अनुसरण किया है। ईश्वर के जितने भी स्वरूप या उनके अवतारों के रूप उस समय प्रचलित थे, उन सभी में कवि ने अपनी आस्था प्रकट की है। परन्तु उन सभी को आपने परब्रह्म राम में लाकर निहित कर दिया है।

परमात्मा का सर्वशक्तिमान स्वरूप ही कवि ने चित्रित किया है। उसका स्वरूप अभेद है और संसार की कोई भी वस्तु उससे पृथक नहीं हैं। वह संसार का नियंत्रक और संचालक है। उसकी शक्तियों से ही यह सब कुछ दिखलाई देता है।

जीव भगवान् का ही रूप है और वह मन, बुद्धि तथा प्राण से पृथक है। कर्म करने के लिए वह जगत् में स्वतन्त्र है परन्तु उसे चलना रामाज्ञा से ही होता है।

जगत् को गोस्वामी जी ने मिथ्या नहीं माना। यह सब तो राम-माया सीता का सृजन किया हुआ है। इसमें और भगवान् में भेद अविद्या माया के प्रभाव से ही दिखलाई देता है, नही तो यह सब कुछ एक ही है, इसमें दो वस्तुएँ नहीं हैं।

माया के कवि ने विद्या और अविद्या स्वरूप दो रूप स्थिर किये हैं। एक सीता की शक्ति है और दूसरी भ्रमात्मक है जो जीव को राम से विमुख करती है। अविद्या माया के भ्रम में फँसकर जीव अपने पुण्यों को नष्ट कर देता है और काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार इत्यादि के चक्कर में फँस जाता है।

उक्त धर्म, ईश्वर, जीव, प्रकृति और माया की मान्यताओं को लेकर कवि ने हरि-प्राप्ति के साधनों पर भी प्रकाश डाला है। यों तो कवि ने भारत में प्रचलित

किसी साधन की व्यर्थ के लिए निन्दा नहीं की और तपस्या इत्यादि सभी में आस्था प्रकट की है परन्तु दास्य भक्ति को ही उन्होंने राम-प्राप्ति का सबसे बड़ा साधन बताया है। इसके अतिरिक्त आपने वर्णाश्रम धर्म में भी पूर्ण आस्था प्रकट की है। आपका यह दृष्टिकोण किसी वर्गविशेष तक ही सीमित न रहकर विश्वव्यापक है।

संक्षिप्त

१. गोस्वामी जी का दार्शनिक चिंतन स्वतन्त्र है। वह किसी वाद-विशेष के पीछे नहीं दौड़ता।

२. भारतीय दर्शन का अध्ययन और चिंतन कवि तुलसी का बहुत ही गम्भीर है।

३. परमात्मा को आपने सर्व-शक्तिमान माना है और सगुण तथा निर्गुण में कोई भेद नहीं माना।

४. जीव को आपने भगवान् का ही रूप माना है। वह भौतिक मन, प्राण और बुद्धि से पृथक है।

५. जगत् को भी कवि ने ज्ञान-मार्गियों की तरह मिथ्या घोषित नहीं किया। ईश्वर और जगत् का भेद माया के कारण है।

६. माया के तुलसीदास ने विद्या और अविद्या दो स्वरूप, निश्चित किये हैं।

७. विद्या स्वरूप माया-सीता द्वारा संचालित है।

८. अविद्या रूपा माया काम, क्रोध, लोभ, मोह, और अहंकार की सेना है।

९. राम-प्राप्ति के साधनों में आपने प्राचीन भारतीय सभी साधनों की सराहना की है परन्तु दास्य-भक्ति को विशेष स्थान दिया है।

१०. वर्णाश्रम धर्म को आपने अपनाया है।

और भक्ति का सम्बन्ध है वहाँ तो वर्णाश्रम धर्म के भी बन्धन खुलकर एक ओर जा गिरते हैं। गोस्वामी तुलसीदास ने धर्म के क्षेत्र मे शूद्रों तक को समान अधिकार दिये है।

तुलसी का धर्म बहुत व्यापक है, वह सभी के लिए अपने द्वार समान रूप से खोलता है, वह कोई धर्म-चक्र की उलझी-सुलझी पहेली नहीं है। वह तो जीवन का एक आदर्श है, पवित्रता का एक आदर्श है, महानता की कसौटी है। इसमें मिलन और विरह का ही राग नहीं अलापा जाता। यहाँ तो जीवन के सभी पहलुओं पर एक मर्यादा के साथ चलने का सबक पढ़ाया जाता है।

रहस्यवाद की तरह तुलसी के राम की कभी-कभी भक्त को झाँकी नहीं मिलती। राम का भक्त तो धनुषधारी राम को सर्वदा अपने साथ पाता है।

राम नामजप

गोस्वामी तुलसीदास ने धर्म के क्षेत्र से कठिन कर्मकाण्डों को हटाने का प्रयास किया है। साधारण पूजा-पाठ में उन्हें विश्वास था। और भी सरल रूप खोजने पर उन्होने राम-जप का साधन निकाला। भारतीय चिंतकों ने विश्व के लिए जो मार्ग सुझाया है वह उसकी आध्यात्मिक तथा भौतिक उन्नति की ओर लक्षित रहता है। इनमे भी विशेषता आध्यात्मिक उन्नति की ही होती है। इस उन्नति के लिए सरल-से-सरल मार्ग खोजे गये है। फिर कर्मकाण्ड में आडम्बर और ढोंग की मात्रा बढ़ती जा रही थी।

महाकवि कबीर ने जब सहज-धर्म की स्थापना की थी तो उसने भी रूढ़िवादी ऐसी बातों को उसमें स्थान नहीं दिया था कि जिन्हें समझने में जन-साधारण को कठिनाई हो। गोस्वामी जी ने भी भक्ति के क्षेत्र में सरल व्यवहार और सरल जप को तप और रहस्यावी कुचक्रों से विश्राम दिलाया और बहुत-से राम-भक्तों ने इसके फलस्वरूप अपने को उन प्रणालियों से हटाकर राम-जप की शरण ली।

गोस्वामी जी के इस प्रयास का जो फल हुआ उसके विषय में राजपति दीक्षित जी ने दोनों पहलुओं को स्पष्ट करते हुए लिखा है :

"सर्व धर्ममय इस जप ने जहाँ अनेक सन्तप्तों को शीतल किया, अनेक भ्रान्तों को ठीक मार्ग पर लगाया, अज्ञान के घोर तिमिर से आच्छादित उरों में 'चिंतामणि' का प्रकाश फैलाया, प्राचीन संस्कृति का प्रतिभास दिया, वहीं इसकी ओट में आलस्य, अकर्मण्यता और प्रमाद में पड़े असत्पात्रों की भी खूब बन पड़ी। ढोंगियों का दल दिन दूना रात चौगुना बढ़ा। चिलम पर गाँजे का दम लगाने वाले न जाने कितने मालपूआखोर ऐसे भी हैं जिनके आचरण का नग्न नर्तन देखकर स्तब्ध हो जाना

पड़ता है। इन मुस्टण्डों से समाज का कोई कल्याण होता है, यह नहीं कहा जा सकता। इतना ही कहना काफी होगा। कि बहुत से खलों, लम्पटों और 'धींगधमधूसरों' को कालनेमि बनने का अवसर राम-नाम ने ही दिया है।"

—'तुलसीदास और उनका युग' पृष्ठ १००

कहने का तात्पर्य यह है कि जिस ढोंग और आडम्बर को दूर करने के लिए कवि ने यह रास्ता अपनाया था, वही ढोग इस रास्ते पर भी छा गया। "मेहनत-मजदूरी से जी चुराकर केवल बाह्याडम्बर के आधार पर सीताराम की अनन्य भक्ति का झूठा दावा करना, नाना प्रकार के धार्मिक कृत्यों द्वारा समाज को छलकर अपनी टेंट गरम करना ही तो अधिकांश राम-नाम की ओट लेने वाले धूर्तों का व्यवसाय हो गया है।"

'तुलसी और उनका युग' पृष्ठ १००

वास्तव में यदि देखा जाय तो धर्म के हर वाद और उसके अनुयाइयों की अंतिम दशा एक सी ही रही है।

कुछ भी सही, परन्तु उस समय धर्म के क्षेत्र में केवल राम-नाम लेकर स्थान पाने वालों की संख्या में वृद्धि हुई और बहुत से लोग, जो धार्मिक आडम्बर के कारण अधार्मिक होते जा रहे थे, वे सब राम-नाम के वृक्ष के नीचे आकर विश्राम कर सके।

एक्य की भावना

गोस्वामी तुलसीदास ने अपने समय की प्रचलित सभी विचारधाराओं में एक्य स्थापित करने का प्रयास किया, यह हम पीछे भी स्पष्ट कर चुके हैं। परन्तु प्रधान रूप से जो एक्य की बात इस समय मे सामने थी वह वैष्णव और शैव्यों की एकता की बात थी। भारत का धार्मिक वातावरण इस समय इन्हीं दो देवताओं को सामने रखकर चल रहा था। शैव्य वैष्णवों से घृणा कर रहे थे, उन्हें छोटा समझते थे और ठीक उसके विपरीत वैष्णव शैव्यों को छोटा समझते थे। गोस्वामी तुलसीदास ने परब्रह्म राम में सर्व-शक्तियों को सन्निहित करके मान के साथ शिव और विष्णु का समन्वय कर दिया और स्पष्ट कर दिया कि ये दोनों भी एक ही हैं, कोई पृथक्-पृथक् वस्तु नही हैं।

राम-भक्त होने के लिए गोस्वामी तुलसीदास ने हर भक्त को शिव-भक्त बनना अनिवार्य कर दिया। कोई भी राम-भक्त उस समय तक हो ही नहीं सकता जब तक कि वह शिव-भक्त न हो। मानस के प्रारम्भ में ही कवि ने याज्ञवल्क्य द्वारा शिव-कथा कहलाई है। फिर आपने शंकर को राम का भक्त भी कहा है:

'कोउ नहिं सिव समान प्रिय मोरे।'

राम स्वयं कहते हैं।

गोस्वामी जी ने शिव और राम की भक्ति में अन्योन्याश्रय सम्बन्ध स्थापित कर दिया है। इसके फलस्वरूप वैष्णवों तथा शैव्यों के मत में बँधी हुई ग्रंथि खुली और धर्म के क्षेत्र में जो पारस्परिक वैमनस्य की विचार-धारा फैल चुकी थी उसका धीरे-धीरे विनाश हुआ।

गोस्वामी जी ने विष्णु और शिव दोनों का समान रूप से गुणगान किया है। विनयपत्रिका में भी कवि ने शिव का गुण गान किया है। 'पार्वती मंगल' में 'जानकी-मंगल' की ही भाँति शिव को लेकर कवि ने रचना की है।

तुलसी के काव्य को आद्योपांत देखने पर उनका नायक राम ही ठहरता है और इसीलिए उन्होंने शिव पर श्रेष्ठता राम को ही दी है और शिव से राम की उपासना कराई है। परन्तु ऐसे भी स्थल मानस में तथा तुलसी-साहित्य में है जहाँ उन्होने दोनों में तादात्म्य स्थापित कर दिया है।

कर्मकान्ड में आस्था

जहाँ तक कर्मकाण्ड की बात है, वह सनातन धर्म की पूरी व्यवस्थाओं का सम्बन्ध है। ईश्वर की उपासना करने के लिए साधन जुटाये जाने लगे। उनके लिए बाहिर साधन और अन्दरूनी साधनों की आवश्यकता हुई। बाहिरी साधनो मे तप, व्रत, प्रतिष्ठान, उपासना, वेद-ज्ञान, धर्म-ग्रन्थ-स्वाध्याय, स्नान, तिलक, पूजा, यज्ञ ये सभी आते हैं। इन सभी में गोस्वामी जी की मान्यता थी। इनका कही भी खण्डन गोस्वामी जी ने नहीं किया। राम-जप करके भक्ति का मार्ग सरल कर देने का अर्थ यह नहीं समझ लेना चाहिए कि गोस्वामी जी ने कहीं भी भारतीय कर्म-काण्ड का खंडन किया है। गोस्वामी जी की पूर्ण आस्था भारतीय कर्म-काण्ड में थी और उन्होंने वर्णाश्रम धर्म के सभी नियमों को मान्यता प्रदान की है।

सारांश

गोस्वामी तुलसीदास ने कोई नवीन धर्म स्थापित नही किया। उनका धर्म भारतीय सनातन धर्म था जो आज तक के पाये जाने वाले भारतीय धर्म-ग्रन्थों और साहित्य मे झलकता था। तुलसी ने उन ग्रन्थो का अध्ययन करके नैतिक, सामाजिक, राजनैतिक और पारिवारिक नियमों तथा आदर्शों के आधार पर जो धर्म अपने ग्रन्थों द्वारा संसार के सामने रखा वह सर्व-धर्म था, किसी वर्ग विशेष का धर्म नहीं था, किसी देश विशेष का धर्म नहीं था। वह सरलता और सत्य पर आधारित था। उसमें पाखण्ड और आडम्बर के लिए न तो बाहिर रूप में ही कोई स्थान था और न अन्दरूनी रूप में ही।

तुलसीदास ने आडम्बरवादी धर्म के ठेकेदारों की अपने साहित्य में पोल खोली और जनता को उनके बहकावे में आने से सावधान किया।

रहस्यवादी भावना के पोषक, जो कुछ गुप्त मंत्रों की चाल में फँसाकर सीधे भक्तों को अपनी ओर आकृष्ट कर रहे थे, उनकी भी तुलसीदास ने पोल खोली।

साथ ही धर्म के क्षेत्र में वैष्णवों तथा शैवों के बीच जो कटुता की भावना बढ़ रही थी उसका भी अन्त किया। तुलसी के साहित्य ने देश में फैला राम-भावना तथा शिव-भावना की आस्थाओं में समन्वय स्थापित किया। इस समन्वय के फल-स्वरूप देश में सनातन धर्म ने फिर से एकरूपता ग्रहण की।

गोस्वामी तुलसीदास ने भक्तों के मार्ग से बहुतासी पाबन्दियों को हटाकर केवल राम-नाम से मुक्ति की बात कही, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि उन्होंने भारतीय कर्म-काण्ड का खंडन किया। उसके प्रति तुलसी के अन्दर काफी मोह था और सच तो यह था कि वह प्राचीनता का प्रेमी था।

संक्षिप्त

१. तुलसी का धर्म प्राचीन भारतीय सनातन धर्म था।
२. उसकी भारतीय दर्शन में पूर्ण आस्था थी।
३. वह भारतीय आदर्शवाद का पोषक था।
४. उसके धर्म में नैतिक आचार-विचार, दार्शनिक विचार, सामाजिक विचार, राजनैतिक विचार, पारिवारिक विचार, व्यक्तिगत विचार सभी आ जाते हैं।
५. भारतीय कर्मकाण्ड में उसे आस्था थी।
६. भक्ति के क्षेत्र में उसने वर्णाश्रम धर्म की पाबन्दियों को तोड़ दिया।
७. वैसे वर्णाश्रम धर्म पर तुलसीदास को आस्था थी।
८. बाह्याडम्बर का तुलसीदास ने खण्डन किया है।
९. रहस्यवादी भ्रमात्मक धर्म आस्थाओं के प्रति भी कवि असन्तुष्ट था।
१०. राम-जप का सरल मार्ग उसने राम-भक्ति के लिए सुझाया।

अध्याय ७

तुलसी की भक्ति-धारणा

मध्य युग में भक्ति का प्रवाह केवल भावनात्मक प्रवाह मात्र नहीं था, वरन् उसके अन्दर समकालीन बौद्धिक धर्माचार्यों की जन-साधारण के जीवन में की गई क्रान्ति का बीजारोपण था। यह क्रांति भारत में फैली उस नीरस विचारधारा के अन्दर हो रही थी जो नाथ पंथियो ने फैला दी थी। इस नीरस पद्धति की कठोर श्रंखलाओं में भारतीय जनता जकड़ी पड़ी थी। इस काल के भक्त कवियो ने जनता की इन श्रंखलाओं को तोड़कर उनके जीवन में सरल भक्ति और प्रेम की धारा प्रवाहित करने का प्रयास किया। सरसता और सम विचार का वह सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास किया कि जिससे भारत की आत्मा एक सरिता में आनन्द पूर्वक स्नान कर सके। नाथ-पंथी योग-पथ द्वारा नासमझ तथा भोली जनता को उन विचारों की ओर ले जा रहे थे कि जिनका रहस्य वे स्वयं समझने में अनभिज्ञ थे। इनके विचार नीरस थे और इनमें जीवन के प्रति जीवन के विचारों का अभाव था। हर चीज इन्हें 'नही' ही दिखलाई देती थी; भ्रम, छल, झूठ और माया तथा नश्वर ही दीख पड़ती थी। जनता के इस उदासीन जीवन में मध्यकालीन भक्ति की धारा ने सरसता का संचार किया और सूखते हुए जीवन-रूपी बिरवों को अपनी अमृत-वर्षा से सींचा।

मध्य युग में भारतीय वातावरण में अन्य विविध वाद पनपे। इन वादों के विषय में हम पीछे अध्याय दो में उल्लेख कर चुके हैं। स्वामी रामानुजाचार्य ने इस काल में भक्ति-भावना के प्रसार को विशेष रूप से प्रश्रय दिया। फिर उनके पश्चात् उनके शिष्य श्री रामानन्द जी ने उनके कार्य को आगे बढ़ाया। रामानन्द जी ने अपना सारा जीवन भक्ति-प्रचार तथा प्रसार के ही अर्पित कर दिया। रामानुजाचार्य द्वारा लगाये हुए भक्ति के वृक्ष को रामानन्द जी ने सींचा और इस योग्य किया कि वह भारत की उदासीन, थकी मांदी तप्त जनता को सहारा दे सके, विश्राम प्रदान कर सके।

रामानुजाचार्य ने भक्ति के क्षेत्र में नारदीय-भक्ति को आदर्श माना। इसका प्रभाव कबीर का भक्ति-भावना पर पड़ा। नारद-भक्ति-सूत्र में भक्ति को कर्म

ज्ञान और योग तीनों से श्रेष्ठ माना है। भक्ति को कबीर ने भी कर्म, ज्ञान और योग से उत्तम कहा है। परन्तु कबीर की भक्ति-भावना में ज्ञान का इतना आधिक्य हो जाता है कि वह कहीं-कहीं पर तो ज्ञान द्वारा संचालित-सी दीख पड़ती है, मोक्ष प्राप्ति के लिए कबीर ने भक्ति को ही साधन-स्वरूप ग्रहण किया है। महाराष्ट्र के प्रसिद्ध भक्त ज्ञानदेव के मतानुसार भी मुक्ति भक्ति के द्वारा ही प्राप्त हो सकती है, ज्ञान द्वारा नहीं।

भाव भंगति बिसवास बिन कटै न संसय सूल।
कहै कबीर हरि भगति बिन मूक्ति नहीं रे मूल॥
(क० ग्रं० पृ० २४६)

भक्ति का निरूपण विविध आचार्यों और कवियों ने अपने-अपने ढंग से किया है। सभी ने अपने-अपने पृथक आधार और इष्ट देव निश्चित् किये हैं। किसी ने राम में आस्था प्रकट की है तो किसी ने कृष्ण में। परन्तु अन्ततोगत्वा सब पहुँचते हैं लगभग एक ही लक्ष्य पर। इन सब भक्तों ने भक्ति की जो परिभाषाएँ प्रस्तुत की हैं उनमें भी अन्तर है। व्यास मुनि ने पूजा इत्यादि के अन्दर ही प्रगाढ़ प्रेम होने को भक्ति कहा। दूसरा मत कहता है कि कीर्तन इत्यादि द्वारा ही भक्ति की सिद्धि होती है। भक्ति में रत होने के लिए कीर्तन की विशेष आवश्यकता है। आत्मा की तीव्र रति-भावना को शांडिल्य ने भक्ति माना है। कुछ भक्तों ने ईश्वर में किसी भी प्रकार परम अनुरक्ति को भक्ति कहा है। निष्काम भावना से भगवान् में लय हो जाना ही भक्ति की चरम सीमा है। भक्ति के उक्त विविध रूपों में प्रेम, अनुराग, सरलता और लौलीनता को विशेष स्थान दिया गया है।

महाकवि कबीर और जायसी की भक्ति-भावना में हमें प्रेम का प्राधान्य मिलता है। प्रेम का यही प्राधान्य सूर-साहित्य में भी आया, परन्तु गोस्वामी तुलसीदास के काव्य में हमें भक्ति का वह स्वरूप देखने को नहीं मिलता। वहाँ प्रेम-भावना प्राधान्य न होकर दास्य-भावना का प्राधान्य है।

भक्ति के भेद

नारद ने भक्ति के दो रूप स्थिर किए हैं :

१. प्रेम-रूपा भक्ति।

२. गुणाश्रिता भक्ति।

भागवत में नवधाभक्ति का विधान है।

गौणी भक्तिः गौणी भक्ति गुणों के अनुसार तीन प्रकार की होती है। परन्तु यह भक्ति स्वयंसाध्य नहीं होती। गौणी भक्ति के भक्तों को भी अन्त में प्रेमा भक्ति मिल जाती है और इस प्रकार उनका ईश्वर से सामीप्य स्थापित हो जाता है।

गौणी भक्ति की ही भांति नवधाभक्ति भी स्वयं साध्य नहीं है। यह भी भक्तों द्वारा साधन स्वरूप ही अपनायी जाती है। इसे वैधी भक्ति भी कहते हैं। इस भक्ति के नौ प्रकार हैं :

भगवान् के नाम, रूप, गुण और प्रभाव का श्रवण, कीर्तन, स्मरण, चरण-सेवन, पूजन, वन्दना तथा दास्य और सख्य भाव से निष्ठा तथा उपासना। गोस्वामी तुलसीदास की भक्ति इसी नवधा भक्ति की श्रेणी में आती है। तुलसी की रचनाओं में खोजने से नवधा भक्ति के नवों रूप अनेकों स्थानों पर भरे पड़े हैं। यहाँ स्थाना भाव के कारण हम उन सभी के उदाहरण देने का प्रयत्न नहीं करेंग।

प्रेमा भक्ति

प्रेमा भक्ति की तीन संज्ञाएँ—गौण प्रेम, मुख्य प्रेम तथा अनन्य प्रेम हैं। प्रेम की ये तीनों स्थिति इस प्रकार है कि जिनमें आत्मा का मोह तीनों में होने पर भी गौण, मुख्य तथा अनन्यावस्था में रहता है। जैसे एक माता खाना खा रही है। खाने में उसकी रुचि है और प्रेम भी ; परन्तु यदि कुछ दूरी पर पड़ा उसका बच्चा चिल्ला उठता है तो वह उसकी रक्षा के लिए खाना त्याग कर दौड़ पड़ती है। यहाँ बच्चे के लिए उसका मुख्य प्रेम है। परन्तु यदि वहाँ बच्चे के पास काला साँप फुंकार उठे तो वह अपने प्राण बचाने के लिए उल्टी दौड़ पड़ती है क्योंकि उसका अपने प्राणों के प्रति अनन्य प्रेम है। जब यही अनन्य प्रेम की स्थिति आत्मा और परमात्मा के बीच कायम हो जाती है तो तादात्म्य हो जाता है, एकीकरण हो जाता है, दो की भावना ही समाप्त हो जाती है। गौण दशा में भक्त परमात्मा की ओर आकृष्ट होता है। मुख्य प्रेम की स्थिति में भक्त ईश्वर के विषय में चिंतन भी करने लगता है और आत्मा, परमात्मा, जगत्, माया इत्यादि के रहस्यों में भी घुसने का प्रयास करता है। अनन्य प्रेम की स्थिति में चित्त की वृत्ति ज्ञान, अहंकार, संसार, सुख, समृद्धि, यश, ऐश्वर्य, काम, लोभ, मोह, क्रोध इत्यादि से हटाकर आनन्दकन्द भगवान् में मिल जाता है। यही चरमावस्था है। इस समय उसकी इच्छा, उसकी कामना, उसका अहंकार, उसका अपनत्व, उसका गौरव सब उसी असीम सत्ता में तिरोहित हो जाते हैं, उनका पृथक से कोई अस्तित्व नहीं रहता। इस कोटि का भक्त जन्म-मरण के भय से मुक्त हो जाता है। मृत्यु से वह भयभीत नहीं होता। नारद जी ने इस अनन्य भक्ति को 'अमृत रूपा भक्ति' कहा है। यह स्थिति प्रेम-भक्ति, सख्य-भक्ति और दास्य भक्ति सभी में आती है। तुलसीदास जी ने भी अमृत-रूपा भक्ति का अनेकों स्थानों पर चित्रण किया है। तुलसी की भक्ति अनन्य-रूपा भक्ति थी जिसमें राम और भक्त का तादात्म्य हो जाता है।

प्रेमा-भक्ति की आसक्तियाँ

भक्ति की नारद मुनि ने ग्यारह आसक्तियाँ मानी हैं :

१. गुणमाहात्म्यासक्ति
२. रूपासक्ति
३. पूजासक्ति
४. स्मरणासक्ति
५. दास्यासक्ति
६. सख्यासक्ति
७. कान्तासक्ति
८. वात्सल्यासक्ति
९. आत्मनिवेदनासक्ति
१०. तन्मयतासक्ति
११. परमविरहासक्ति

जो भक्त प्रेमा भक्ति के वास्तविक रहस्य को जान जाते हैं उनमें ये सभी आसक्तियाँ स्वयंमेव आ जाती है। भक्ति में प्रेम की प्रधानता है। इसीलिए नारद और शांडिल्य ने भी इसके उदाहरण दिये हैं। ये आसक्तियाँ एक ही बेल की विभिन्न वल्लरियाँ है, एक ही झरने में से विभक्त हुई ग्यारह धाराएँ हैं।

तुलसी की रचनाओं में ये ग्यारह की ग्यारह आसक्तियाँ न जाने कितनी बार आई हैं। तुलसीदास ने अपने काव्य में सभी प्रकार के पात्रों को लिया है और सभी के सुन्दर दृष्टान्त प्रस्तुत किये हैं। गुणमाहात्म्यासक्त भक्तों में नारद, भुशुण्डि और शिव हैं; मिथिला के रहने वाले रूपासक्त भक्त है; भरत पूजासक्त भक्त हैं; ध्रुव, प्रहलाद, सनकादि भक्त स्मरणासक्त भक्तों में हैं; हनूमान और लक्ष्मण पूजासक्त भक्त है; विभोषण, सुग्रीव, निषादराज इत्यादि सख्य भक्त हैं. सीता कान्तासक्त भक्त है; दशरथ, कौशल्या इत्यादि वात्सल्यासक्त भक्त हैं; आत्म निवेदन के क्षेत्र में विभीषण और हनुमान को रखा जा सकता है; दशरथ परमविरहासक्त भक्तों में हैं और तन्मयासक्ति हमें सुतीक्षण में मिलती है।

प्रेम और भक्ति में अन्तर

भक्ति में प्रेम के ही समान एकनिष्ठता विद्यमान है। भक्ति के क्षेत्र में पारस्परिक स्पर्धा समाप्त हो जाती है। भक्ति और प्रेम का यह अंतर है कि प्रेमी अपनी प्रेमिका को यह सहन नहीं कर सकता कि उसे कोई अन्य व्यक्ति भी प्रेम करे परन्तु भक्त इस बन्धन से मुक्त हो जाता है। वहाँ वह बन्धन समाप्त हो जाता है। ब्रज में जब ब्रज ललनाएँ कृष्ण की बंसी की ठेर सुनती हैं तो वे अपने घरों का काम

त्यागकर उस ओर चल देती है, ग्वाले भी उस मधुर ध्वनि में लवलीन होकर भगवान के उस सामीप्य में जाती हुई अपनी स्त्रियों को नहीं रोकते। वे भक्त हैं कृष्ण के,— इसलिए उनके अन्दर से वे संकुचित भावना समाप्त हो चुकी है।

प्रेम भक्ति के साधन

प्रेमा भक्ति के साधन दो प्रकार के हैं :

१. अन्तरंग साधन।

२. बहिरंग साधन।

शाण्डिल्य ने अंतरंग साधनों में ज्ञान को रखा है और गौणी भक्ति के सब साधनों को बहिरंग माना है।

गोस्वामी तुलसीदास ने भक्ति के साधनों में अंतरंग और बहिरंग दोनों प्रकार के साधनों को जुटाया है। राम-जप, मनन, चिंतन इत्यादि उनकी भक्ति के अंतरंग साधन थे। बहिरंग साधनों में कथा, कीर्तन, पूजा-पाठ इत्यादि सब आ जाते हैं। वेद-पठन इत्यादि भी बहिरंग साधनों में से ही है। गोस्वामी तुलसीदास ने इन सभी साधनों को अपने जीवन में घटाकर देखा था।

सत्संग पर गोस्वामी जी ने विशेष बल दिया है। वे लिखते हैं :

बिन सतसंग भगति नहिं होई। ते तब मिल द्रवै जब सोई॥
जब द्रवै दीन दयालु राघव साधु संगति पाइये।
जेहि दरस परस समागमादि पाप-रासि नसाइये॥
जिन्ह के मिले सुख-दुःख समान अमानतादिक गुन भये।
मद मोह लोभ बिषाद, क्रोध सुबोध ते सहजहिं गये॥

—विनयपत्रिका, पद १३६ (१०)

— तुलसीदास और उनका युग—पृष्ठ १६०

प्रेमा भक्ति की श्रेष्ठता

प्रेमा भक्ति को प्राप्त कर लेने के पश्चात् भक्त के सामने ज्ञान, वैराग्य, इत्यादि महत्त्वहीन हो जाते हैं। गोस्वामी तुलसीदास ने भक्ति को सकल गुणों की कान माना है। उनके मत से भक्ति सर्वश्रेष्ठ साधन है ईश्वर प्राप्ति का। ज्ञानादि को वह इसके आधीन मानते हैं।

'सकल सुकृत फल' देने वाली भक्ति होती है। राम भक्ति के बिना सब ज्ञान, सब तपस्या, सब स्वाध्याय, सब विद्या व्यर्थ है।

प्रेमा भक्ति की सुलभता

प्रेमा भक्ति को गोस्वामी तुलसीदास ने सबके लिए सुलभ माना है। ज्ञान-

साधनों में मन को अपने में रमाने के साधनों का अभाव रहता है परन्तु प्रेमा भक्ति में तो मन हर समय राम में रमा रहता है। इसलिए उसे इधर-उधर स्वतंत्र तक-टल्ले मारने का अवसर ही नहीं मिलता। वह तो हर समय राम में लौलीन रहता है।

प्रेमा भक्ति की रसात्मकता उसका सबसे बड़ा आकर्षण है, जिसकी ओर आत्मा का सम्मान आप-से-आप ही हो जाता है। भक्ति के क्षेत्र में मन कभी भी निराश्रित नहीं रहता, उसे हर समय सहारा रहता है। उसका राम हर समय उसके साथ होता है और वह कठिन-से-कठिन समय आने पर भी धैर्य को नहीं छोड़ता, साहस का परित्याग नहीं करता।

ज्ञान-मार्ग कठिन है और तपस्या के द्वारा उस पर चलना होता है। वहाँ का भूला फिर संभलने की आशा नहीं कर सकता क्योंकि ज्ञान के बाद बस अज्ञान ही तो है वहाँ थोड़ी या बहुत भक्ति की गुंजाइश नहीं है। ज्ञान तो कोरा गणित का प्रश्न है जो या तो सही है या फिर गलत; बीच की स्थिति वहाँ पैदा ही नहीं होती। ऐसी दशा भक्ति की नहीं है। इसीलिए भक्त में अभिमान नहीं होता और वह कभी भी अपने को पूर्ण नहीं समझता। उसकी पूर्णता भगवान् में विलीन होकर ही होती है।

प्रेमा-भक्ति-मार्ग के शत्रु

जब भक्त भक्ति के राजमार्ग पर चलता है तो ज्ञान, वैराग्य और प्रकृति उसकी देख-भाल करती है। भक्त अपने प्रियतम या ईश्वर की ओर एक धुन बाँधकर संसार-सागर में निर्लिप्त भावना से अपनी नौका खेता है। उसकी इस निर्विघ्न तैरती हुई नौका को देखकर काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार लालायित हो उठते हैं। ये जल-दस्यु हैं जो भक्त की नौका पर लदी राम-भक्ति की अमूल्य धन-राशि को चुराकर उस भक्त को कंगाल बना देना चाहते हैं। ये सर्वदा रहते ही इसी ताक-झाँक में हैं। अभिमान और कुतर्क इत्यादि सबसे पहिले भक्त पर आक्रमण करते हैं और यदि यह उन्हें विफल कर देता है तो फिर संशय अपने दलबल के साथ आता है। इसके पश्चात् काम, क्रोध, लोभ, मोह इत्यादि अपने-अपने अवसर खोजते हैं। जो भक्ति का साधक इन सब कुचक्रों को सहन कर जाता है वह अनन्य भक्ति की कोटि में पहुँच जाता है और उसका विवेक उसे इन सब शत्रुओं पर विजय दिला देता है। ये सब उसका मुँह देखते रह जाते हैं और वह इनके देखते-देखते अपनी भक्ति की धनराशि को खुले खजाने सबके सामने अपनी आत्मा की डोली में बिठाकर भगवान् के दरबार में पहुँच जाता है। मार्ग में आने वाले लुटेरे उसका बाल भी

बाँका नहीं कर पाते और राज मार्ग के संरक्षक उसका पूरा-पूरा साथ देते हैं। गोस्वामी जी कहते हैं :

मोह मूल बहु सूल प्रद त्यागहु तम अभिमान।
भजहु राम रघुनायक कृपा सिंधु भगवान्॥

कुतर्क और संशय के विरुद्ध भी कवि ने अपना स्वतंत्र मत प्रकट किया है। राम-भजन में कुतर्क को स्थान देना मूर्खता है। भक्ति-मार्ग में आने वाले शत्रुओं से सतर्क रहने के लिए कवि अपने काव्य में अनेकों स्थानों पर संकेत करता है।

संगति पर कवि ने विशेष बल दिया है, इस विषय में हम पीछे भी संकेत कर चुके है। संगति का प्रभाव मनुष्य पर अवश्य होता है। कवि कहता है :

"को न कुसंगति पाय नसाई।"

इसलिए जो भक्त कुसंगति में पड़ जाता है उस पर शत्रु लोग हावी हो जाते हैं और धीरे-धीरे उनके साथ रहकर उसका भी मार्ग बदल जाता है। वह भी कुछ दिन बाद यह महसूस करना बन्द कर देता है कि वह किसी कुसंगति में पड़ गया है और इस प्रकार वह धीरे-धीरे राम-विमुख होता चला जाता है।

भक्त

काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार के पाश में जकड़ा हुआ जीव कभी भी भक्तों की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। इसलिए भक्त वही है जो काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार पर विजय प्राप्त कर चुका हो। भक्त समस्त विश्व को समदृष्टि से देखता है और संसार के झंझटों से अपने को मुक्त करके सरल प्रकृति से रहता है। भक्त हर समय भगवान् की भक्ति में लीन रहता है। उसके पास इधर-उधर मन लगाने के लिए अवकाश ही नहीं होता। भगवान्-भजन और उसकी लीलाओं को देखने से उसे फुर्सत ही कहाँ। वह तो उठते-बैठते, सोते-जागते हर समय अपने अन्तर तथा बहिर जगत में राम के ही दर्शन करता है। इसी स्थिति के व्यक्ति को भक्त की संज्ञा दी जा सकती है।

भक्त अपनी सब योनियों में प्रसन्न रहकर भक्ति की ओर अग्रसर होता है। वह अपने कष्ट पर भगवान् को दोषी नहीं ठहराता वरन् उसे अपने कर्मों का फल मानकर हँसते-हँसते सहन करता है। वह अपने इष्टदेव के ध्यान में हर समय मग्न रहकर पुलकित होता है। उसके नेत्रों से आनन्दाश्रु प्रवाहित होते रहते हैं। उसकी आसक्ति अपने इष्टदेव के लिए उक्त ग्यारह प्रकार में से चाहे जिस प्रकार की भी क्यों न हो वरन् वह होती है अनन्त प्रकार की ही। वह अपनत्व को ईश्वरत्व में विलीन कर देता है।

भगवान् का अखण्ड भजन करने से उसके अन्दर दिव्य शक्ति का समावेश होता है। उसकी कांति दुबाला हो जाती है और उसके अन्दर एक आकर्षण पैदा हो जाता है।

भक्तों के प्रकार

भगवद्भक्तों के गीता में चार प्रकार माने हैं। गोस्वामी तुलसीदास ने इन चारों प्रकार के भक्तों का उल्लेख अपने साहित्य में किया है :

'राम भगत जग चारि प्रकारा।'

मानस में चारों प्रकार के भक्तों के दृष्टान्त मिल जायेंगे। यहाँ हम इस प्रसंग को विस्तार देना व्यर्थ समझते हैं।

भक्त-महिमा

भक्त की महिमा का गान स्वयं भगवान् ने उसी प्रकार किया है जिस प्रकार भक्त अपने इष्टदेव क. बखान करते हैं। भागवत में भक्त को त्रिलोक को पवित्र करने वाला कहा गया है। भक्त की महिमा का बखान कबीरदासजी ने भी मुक्त कण्ठ से किया है। तुलसी कहते हैं :

मोरे मन प्रभु अस बिस्वासा। राम तें अधिक राम कर दासा।
राम सिंधु सज्जन घन धीरा। चंदन तरु हरि संत समीरा॥

—तुलसीदास और उनका युग, पृष्ठ १७८

गुरु का स्थान

भक्ति के क्षेत्र में भक्त बिना गुरु के आ ही नहीं सकता। इन दोनों का बहुत बड़ा सम्बन्ध है। भक्ति के जितने भी सम्प्रदाय इस मध्य युग में स्थापित हुए उन सभी ने गुरु की मान्यता को कायम रखा है। कबीरदास ने तो गुरु को भगवान् पर भी श्रेष्ठता दे डाली है।

भक्ति की साधना बिना गुरु के एक पग भी आगे नहीं बढ़ती। साधना के क्षेत्र में प्रथम स्थान गुरु का ही है। भक्त को राजमार्ग गुरु के ही प्रसाद से दिखलाई देता है। राजा रत्नसेन को सिंहल जाने के लिए हीरामन तोते को गुरु बनाना पड़ा था। गुरु के द्वारा बतलाये मार्ग पर चलने से ही भगवान् की प्राप्ति सम्भव है। जब जब मार्ग में भक्त को शत्रुओं का सामना करना होता है तब-तब उसे रक्षा का मार्ग सुझाने का कार्य गुरु का ही है। भक्ति की सांगोपांग सम्पन्नता के लिए गुरु का मार्ग-प्रदर्शन नितान्त आवश्यक है।

रामानुज, रामानंद, वल्लभाचार्य इत्यादि अपने-अपने वादों के गुरु थे जिन्हें उन धाराओं के भक्तों ने कभी भी भगवान् से नीचा नहीं समझा। गोस्वामी

तुलसीदास ने भी गुरु की महिमा का असाधारण रूप से ही चित्रण किया है। गुरु भक्ति का चरम उत्कर्ष हमें मानस के प्रारम्भ में ही मिल जाता है:

बंदऊँ गुरु पद कंज कृपासिंधु नररूप हरि।
महा मोह तम पुंज जासु बचन रविकर निकर॥
बंदऊँ गुरु-पद-पदुम परागा। सुरुचि सुबास सरस अनुरागा।
अमिअ-मूरि-मय चूरन चारू। समन सकल-भव-रुज परिवारू॥

प्राचीन और मध्य कालान गुरु की भावना को कविवर तुलसीदास ने जरा भी ठेस नही पँचाई वरन् उसका वर्णन चरमोत्कर्ष से ही किया है।

सारांश

मध्यकाल में भक्ति की जो धारा बही उसके अंतरंग और बहिरंग का परीक्षण करने से उसमें बुद्धि, भावना और सेवा सभी का समन्वय हो जाता है। प्रेम-रूपा, गुणाश्रिता और नवधा तीन प्रकार की भक्ति आचार्यो ने मानी है। गुणाश्रित भक्ति अन्त मे जाकर प्रेमा भक्ति में विलीन हो जाती है।

गोस्वामी तुलसीदास की भक्ति को हम प्रेमा भक्ति के अंतर्गत पाते हैं। यह भक्ति तीसरी स्थिति में भगवान् का सामीप्य प्राप्त करती है। इसकी प्रथम स्थिति गौण-प्रेम की है, दूसरी मुख्य प्रेम की तथा तीसरी अनन्य प्रेम की है।

प्रेमा भक्ति की ग्यारह आसक्तियाँ है। इन सभी प्रकार की आसक्तियों के उदाहरण तुलसीदास ने रामायण में प्रस्तुत किये है और सभी प्रकार के भक्तों का चित्रण उसमें मिलता है।

भक्ति प्रेम की वह स्थिति है जब प्रेमी की यह इच्छा हो उठे कि जिस सौंदर्य और गुण की कल्पना पर वह रीझता है उस पर विश्व रीझ उठे। एकाधिकार की संकुचित भावना समाप्त हो जाये।

प्रेमा भक्ति के साधन भी अंतरंग तथा बहिरंग दोनों प्रकार के है। अंतरंग साधनों में ज्ञान और बहिरग साधनों में पूजा पाठ इत्यादि आते है।

तुलसीदास ने प्रेमा भक्ति को ज्ञान से भी श्रेष्ठ माना है और उनका विचार है कि जब भक्त अनन्य स्थिति को पहुँच जाता है तो ज्ञान को स्वयं उसका चरण-चुम्बन करना पड़ता है।

प्रेमा भक्ति को गोस्वामी तुलसीदास ने सबसे सुलभ माना है, क्योंकि इसके अन्दर मन के बहक जाने का सबसे कम अवसर रहता है। मन तो हर समय भगवान की अनुपम मूर्ति में समाया हुआ रहता है। उसे फुर्सत ही कहाँ कि वह दुनिया के जंजालों में फंसता फिरे।

भक्त जब राजमार्ग पर चलता है तो जहाँ एक ओर ज्ञान इत्यादि राज कर्मचारी उसकी रक्षा के लिए होते हैं वहाँ दूसरी ओर काम, क्रोध, लोभ, मोह अहंकार, कुतर्क इत्यादि लुटेरे भी कम नहीं होते जो मार्ग में ही उसे भ्रष्ट करके उसका सर्वस्व लूट लेना चाहते है। जो भक्त अनन्य स्थिति को प्राप्त हो जाता है वह इन शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर लेता है।

भक्त वही है जो काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार और कुतर्क पर विजय प्राप्त करले और कुसंगति से अपने को बचाकर चले। ये भक्त चार प्रकार के होते हैं। गोस्वामी तुलसीदास ने कबीर इत्यादि की ही भाँति गुरु की महिमा का बखान चरमोत्कर्ष से किया है। गुरु को तुलसी ने पिता से भी ऊँचा स्थान प्रदान किया है।

संक्षिप्त

१. मध्यकाल में भक्ति-धारा ने अपने युग के चिंतन, भावना और सेवा को अपने अन्दर समेट लिया था।

२. प्रेम-रूपा, गुणाश्रिता तथा नवधा–भक्ति के ये तीन रूप बने।

३. गुणाश्रिता भी अन्तिम स्थिति में आकर प्रेमा भक्ति में विलीन हो गई।

४. गोस्वामी तुलसीदास ने प्रेमा भक्ति को अपनाया।

५. प्रेमा भक्ति गौण, मुख्य और अनन्य रूपों में प्रवाहित होती है।

६. प्रेमा भक्ति की ग्यारह आसक्तियाँ हैं।

७. इनका चित्रण कवि ने सभी के पात्रों के रूप में पृथक्-पृथक् उदाहरण प्रस्तुत करके किया है। रामायण में ये सब पात्र हैं।

८. तुलसी ने प्रेमा भक्ति को राम प्राप्ति का सर्व-श्रेष्ठ साधन माना है।

९. तुलसी के विचार से प्रेमा भक्ति द्वारा राम-प्राप्ति सबसे सुलभ है क्योंकि इसके अन्दर आत्मा को परमात्मा के चिंतन और उसके सौंदर्य-अवलोकन से भटकने का अवसर ही नहीं मिलता।

१०. भक्त को राज-मार्ग गुरु दिखलाता है और जब वह उस पर अग्रसर होता है तो ज्ञान इत्यादि राजकर्मचारियों के रूप में मार्ग में आने वाले संकटों में भक्त को सहायक होते है।

११. जहाँ एक ओर ये सहायक है, वहाँ दूसरी ओर से काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, कुतर्क और कुसंगति उसे लूटने की घात में खड़े रहते हैं।

१२. अनन्य भक्त जो पहिले से ही काम, क्रोध, लोभ, मोह, कुतर्क और अहंकार

तथा कुसंगति पर विजय प्राप्त कर लेता है इनसे नहीं डरता। निर्भय होकर वह अपने पथ पर अग्रसर होता है।

१३. भक्त कवि ने चार प्रकार के माने हैं।

१४. गोस्वामी तुलसीदास ने कबीर की भाँति गुरु का वर्णन चरमोत्कर्ष के साथ किया है।

१५. गुरु का आसन उनके विचार से बहुत ऊँचा है, परन्तु कबीर के समान उन्हें यह निर्णय करने में संशय नहीं होता कि वह भगवान् को बड़ा कहें या गुरु को। बिड़ा उनके निकट राम ही है जिसमें सब तिरोहित हो जाते हैं।

अध्याय ८

तुलसी का मूल्यांकन

विचारक के नाते

तुलसी एक साधारण भक्त मात्र ही नहीं था, वह अपने युग का एक विचारक था, जिसने देश के प्रचलित धर्म, मत-मतांतरों, आस्थाओं और विश्वासों, वेद-शास्त्रों, सामाजिक तथा नैतिक कुरीतियों और राजनैतिक स्थितियों के विषय में चिंतन किया है। गोस्वामी तुलसीदास ने सनातन धर्म के प्राचीन ग्रन्थों का अध्ययन कर इस मूल-मंत्र को पहिचाना कि उस समय जितने भी विचार देश में व्याप्त थे उन सबकी जड़ें उन्हीं प्राचीन ग्रन्थों तथा आस्थाओं की जमीन में उगी थीं।

देश परतंत्र था। धर्म के क्षेत्र में जहाँ एक ओर ज्ञान मार्गी लोगों का पाखण्डवाद चल रहा था और भोली जनता में अंध-विश्वास अपनी अज्ञानता के कारण उनकी शिकार होती चली जा रही थी वहाँ दूसरी ओर शैव्य और वैष्णवों का भी पारस्परिक मतभेद भयानक रूप धारण करता चला जा रहा था। इसके फल-स्वरूप भारतीय जनता की धार्मिक एकता भी खतरे में पड़ सकती थी।

एक विचारक के नाते तुलसीदास ने शैव्यों और वैष्णवों के मतभेद को समाप्त करके एक मार्ग सुझाया। तुलसीदास का यह कार्य महात्मा गांधी के उस कार्य से कम महत्त्वपूर्ण नहीं था जिसके द्वारा उन्होंने अछूतों को हिन्दुओं से पृथक कर देने वाली अंग्रेजी सरकार की चाल को बरदाश्त न करके अनशन व्रत किया था।

गोस्वामी तुलसीदास का समस्त साहित्य एक चिंतन का विषय है। भक्ति का प्राधान्य उनमें है अवश्य परन्तु उसका प्रभाव इतना अधिक नहीं कि वह बुद्धि के बन्धनों को तोड़ता हुआ व्यापक बन जाये और बुद्धि कार्य करना ही बन्द कर दे।

सामाजिक नियमों के क्षेत्र में, राजनैतिक कार्य-कुशलता के क्षेत्र में राम के द्वारा कवि ने जो कार्य कराये हैं उनके अन्दर बुद्धि के चरम उत्कर्ष के उदाहरण मिलते हैं।

गोस्वामी तुलसीदास नें भारतीय दर्शन का चिंतन किया है। ब्रह्म, जीव, प्रकृति, माया इत्यादि के रहस्यों का उदाहरणों सहित स्पष्टीकरण किया है। इन तत्वों का

विवेचन कवि ने बड़ी ही सतर्कता के साथ किया है। आपने भगवान् के अनेक रूपों में एकरूपता स्थापित की है और इस प्रकार अपनी मान्यता को सबकी मान्यता का रूप देकर उसे अधिकाधिक व्यापक बनाने में योग दिया है।

यह प्रयास गोस्वामी तुलसीदास का सबसे सफल प्रयास था, जिसका प्रभाव हम आज भी रामायण के प्रभाव को देखकर लगा सकते हैं।

गोस्वामी तुलसीदास का चिंतन लोक मर्यादाओं को लेकर चलता है। नैतिकता उसमें पूर्णरूप से विद्यमान है। जहाँ तक भी संसार के सम्बन्ध हो सकते हैं सभी को कवि ने अपने आदर्शवाद की कसौटी पर कसा है। गोस्वामी तुलसीदास ने अपने चिंतन के द्वारा, अपने साहित्य के द्वारा कई समाजों का चित्रांकन किया है। (अवध के समाज का, मिथिला के समाज का, ऋषि-मुनियों के समाज का, वानरों के समाज का, राक्षसों के समाज का), कई राजाओं और प्रजाओं का चित्रण किया है (दशरथ, राम, भरत, बाली, सुग्रीव, रावण, विभीषण तथा इनकी प्रजा), गुरु, पिता, माता, भाई (छोटे-बड़े), स्त्री इत्यादि का चित्रण किया है, मित्रों का चित्रण किया है, दासों का चित्रण किया है, सभी की मर्यादाएँ निर्धारित की हैं, सबके कर्त्तव्यों के आदर्श स्थापित किये है। वचन का मूल्य आंका है और उस पर प्राण न्यौछावर किये है। रामायण में कवि का चिंतन जहाँ एक ओर भारतीय दर्शन के क्षेत्र में सूक्ष्म-से-सूक्ष्म तत्वों की ओर अग्रसर हुआ है वहाँ उसने व्यक्तिगत जीवन, समाजगत जीवन, राजकीय जीवन, शासन तथा अन्य इसी प्रकार की सांसारिक पेचीदगियों को भी उसी प्रकार सफलता से छुआ है।

गोस्वामी तुलसीदास का चिंतन हर दिशा में बहुत ही व्यापक है। उसमें एकांगी न तो चित्रण ही है और न चिंतन ही। तुलसी जिस वस्तु को भी उठाता है उसे पूरी तरह से परखकर देखता है, उसके दर्शन भर कर लेना उसका अभीष्ट नहीं। वह हर वस्तु का परीक्षण करता है और पूरी छान-बीन के पश्चात् अपना निर्णय देता है। मानव-जीवन की बहुत-सी परिस्थितियों पर कवि ने अपना निर्णय प्रस्तुत किया है। वह उसका अपना चिंतन है और उस पर सनातन धर्म की छाप है। प्राचीन रूढ़ियों को कबीर की तरह एक दम छिन्न-भिन्न कर डालने की शक्ति उसमें नहीं थी। सुधारवादी सुझाव वह प्रस्तुत कर सकता था। यों जहाँ तक प्राचीनता का सम्बन्ध था वह अपने चिंतन में, विचार तो अलग रहा, कर्मकाण्ड से भी ऊपर न उठ सका। वर्णाश्रम धर्म में उसकी पूर्ण आस्था थी, परन्तु फिर भी भक्ति के क्षेत्र में उसने सब प्रतिबन्धों को तोड़ दिया।

गोस्वामी तुलसीदास ने जो अपने समय में दूसरा सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य किया वह था धर्म-ग्रन्थों को भाषा में ले आना। संस्कृत आचार्यों द्वारा उन दिनों

तुलसीदास के इस क्रांतिकारी कृत्य और चिंतन का कितना विरोध हुआ होगा इसका अन्दाज ठीक से लगाना आज उसी प्रकार कठिन है जैसे एक सात-आठ वर्ष का बच्चा यह अन्दाज नहीं लगा सकता कि अभी दस-बारह वर्ष पूर्व भारत में कोई ऐसी अंग्रेज जाति थी जो स्वाधीनता का नाम लेने वाले भारतीयों को कारावास में बन्द कर देती था।

गोस्वामी तुलसीदास अपने समय के एक उत्कृष्ट विचारक थे, जिन्होंने भारतीय जनता को एकधर्मता प्रदान की, एक दार्शनिक चिंतन प्रदान किया, एक समाज का ढांचा दिया, एक राजनैतिक रूपरेखा दी राम-राज्य की और छोटे-बड़े की मर्यादा को कायम रखने से सुख तथा शान्ति स्थापित होती है, इस रहस्य का उद्घाटन किया। तुलसी अपने समय का एक जबरदस्त चिंतक था। वह अपनी विचार-धारा में अपने काल के प्रायः सभी धार्मिक चिंतकों को बहा सका प्रभावित कर सका। उसके काव्य ने समस्त देश का चिंतन बदल दिया। भाषा में प्राप्त धर्म ग्रन्थों को पाकर जनता की समझ में बहुत-सी वे बातें आईं। जिन्हें उल्टी-सीधी संस्कृत पढ़े पंडित उन्हें इसलिए नहीं बतलाते थे कि उनके बतलाने से उनकी हलवा-पूरियों में टोटा आने लगता था।

साहित्यिक के नाते

एक साहित्यिक के नाते गोस्वामी तुलसीदास का मूल्यांकन करने के लिए साहित्य के यदि सभी गुणों को ले लिया जाये तो हम देखेंगे कि वे सब किसी-न-किसी रूप में इसके अन्दर विद्यमान हैं। गोस्वामी जी संस्कृत और हिन्दी के प्रकांड पंडित थे। केवल सुनी-सुनाई बातों पर महाकवि जायसी तथा कबीर की तरह उनका ज्ञान आश्रित नहीं था। उन्होंने साहित्य, दर्शन तथा अन्य धर्म-ग्रन्थों का अध्ययन किया था। इसीलिए तुलसी-साहित्य में भारतीय संस्कृति का वह निचोड़ा हुआ रस मिल जाता है जिसमें दार्शनिक तथा साहित्यिक अभिव्यक्ति बहुत ही निखार के साथ आ सकी है।

गोस्वामी तुलसीदास ने अपने समय की प्रचलित अवधी तथा ब्रज दोनों भाषाओं में समान कुशलता के साथ रचना की है। अपने समय की जितनी भी प्रचलित शैलियाँ थीं, सभी को कवि ने अपनाया है। आपके साहित्य के विषय में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं।

"गोस्वामी जी के प्रादुर्भाव को हिन्दी काव्य के क्षेत्र में एक चमत्कार समझना चाहिए। हिन्दी काव्य की शक्ति का पूर्ण प्रसार इनकी रचनाओं में ही पहल-पहल दिखाई पड़ा। वीर गाथा काल के कवि अपने संकुचित क्षेत्र में काव्य, भाषा के पुराने रूप को लेकर एक विशेष शैली की परम्परा निभाते आ रहे थे।

चलती भाषा का संस्कार और समुन्नति उनके द्वारा नहीं हुई। भक्ति काल में आकर भाषा के चलते रूप को समाश्रय मिलने लगा। कबीरदास ने चलती बोली में अपनी वाणी कही। पर वह बोली के ठिकाने की थी। उसका कोई नियत रूप न था। शौरसेनी-अपभ्रंश या नागर अपभ्रंश का जो सामान्य रूप साहित्य के लिये स्वीकृत था उससे कबीर का लगाव न था। उन्होंने नाथ-पंथियों की 'सधुक्कड़ी भाषा' का व्यवहार किया जिसमें खड़ी बोली के बीच राजस्थानी और पंजाबी का मेल था।

भक्तवर सूरदास जी ने ब्रज की चलती भाषा जो परम्परा से चली आती हुई काव्य भाषा के बीच पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित किया।..... प्रेम मार्गी सूफी कवियों ने अपनी रचनाओं के लिए अवधी को चुना। इस प्रकार गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपनें समय में काव्य भाषा के दो रूप प्रचलित पाये—एक ब्रज और दूसरी अवधी। दोनों में उन्होंने समान अधिकार के साथ रचनाएँ की।

भाषा पद्य के स्वरूप को लेते है तो गोस्वामी जी के सामने कई शैलियाँ प्रचलित थीं, जिनमें से मुख्य ये है—(क) वीर गाथा काल की छप्पय-पद्धति (ख) विद्यापति और सूरदास की गीत-पद्धति (ग) गंग आदि भाटों की कवित्त-सवैया-पद्धति (घ) कबीरदास की नीति-सम्बन्धी बानी की दोहा-पद्धति—जो अपभ्रंश काल से चली आती थी और (ङ) ईश्वरदास की दोहे-चौपाई वाली प्रबन्ध-पद्धति। इस प्रकार काव्य-भाषा के दो रूप और रचना की पाँच मुख्य शैलियाँ साहित्यिक क्षेत्र को मिलीं। गोस्वामी जी के रचना-विधान की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा के बल से सबके सौंदर्य की पराकाष्ठा अपनी दिव्य वाणी में दिखाकर साहित्य क्षेत्र में प्रथप पद के अधिकारी हुए।"

—हिन्दी साहित्य का इतिहास—रामचन्द्र शुक्ल—पृ० १३२-१३४

गोस्वामी तुलसीदास के साहित्य में हमें बौद्धिकता, भावनात्मकता, काव्य-कला और कलात्मक शैली का सामंजस्य मिलता है। यह सामंजस्य स्थापित करना साधारण कोटि के कलाकार के लिए नितान्त असम्भव है। प्रथम श्रेणी का कलाकार ही अपनी प्रतिभा का यह चमत्कार दिखला सकता है। गोस्वामी जी के बुद्धि तत्व का उल्लेख हम विचारक के नाते तुलसी का अध्ययन करते समय देख चुके हैं। भावना के क्षेत्र में कवि का मूल्यांकन हम इसी अध्याय में आगे करेंगे। अब रह जाती हैं काव्य-कला और शैली। जहाँ तक काव्य-कला का सम्बन्ध है तुलसीदास ने अपने साहित्य में सार्थक अलंकारों की योजना प्रस्तुत की है। शब्दालंकार तथा अर्थालंकार दोनों का ही प्रयोग किया है परन्तु विशेषता अर्थालंकारों की ही है। काव्य में प्रयुक्त होने वाले नौ के नौ रसों को कवि ने काव्य में भरा है और शृंगार

के मिलन तथा विछोह दोनों पक्षों का समावेश बहुत ही कलात्मक तथा मार्मिक ढंग से किया है। जहाँ तक छंद-योजना का सम्बन्ध है वहाँ तक कवि ने न केवल मात्रा, गण और वर्णों पर ही विचार किया है और न छन्द-विधान मात्र को ही अपनाया है, वरन् भावानुरूप नैसर्गिक ध्वनि को छन्दों में समा देना भी इसी अद्भुत कलाकार का कृत्य है। अलंकार, रस और छन्दों की सुन्दर योजना के साथ-ही-साथ कवि ने शब्द-शक्तियों का भी सुन्दर, प्रभावशाली और अवसरानुकूल प्रयोग किया है। कवि ने काव्य-सौष्ठव पर पूरा-पूरा ध्यान दिया है। तुलसी के काल में एक भी ऐसा मार्मिक स्थल नहीं मिलेगा जो कवि की पैनी दृष्टि से छूट गया हो। साथ ही किसी निरर्थक स्थल पर भी कवि आवश्यकता से अधिक नहीं ठहरा। जहाँ तक काव्य की प्रबन्धात्मकता की बात है वहाँ तक तो तुलसी का मानस अपनी समानता में आज भी हिन्दी के किसी अन्य प्रबन्ध काव्य को कोसों पास तक नहीं आने देता। तुलसी ने अपने काव्य में जिन पात्रों को लिया है उनमें प्राण फूँक दिया है। क्या मजाल जो पाठक उन्हें पढ़कर उनके अन्दर कवि-इच्छित भावनाओं तथा विचारों को झलक न देख सकें। तुलसी के पात्र बोलते हैं, वे जीते-जागते स्वरूप में हैं, काठ के टुकड़े कवि ने गढ़कर खड़े नहीं कर दिये हैं।

तुलसी का साहित्य इस प्रकार हर दिशा से देखने पर हिन्दी काव्य-गगन में अपने अनूठेपन का सानी नहीं रखता। गोस्वामी जी का साहित्यिक-मूल्यांकन करना सूर्य को दीपक दिखलाने के समान है।

एक भावुक भक्त के नाते As an Emotional

तुलसी में जहाँ एक ओर विचारों का गाम्भीर्य था, चिंतन की पराकाष्ठा थी वहाँ दूसरी ओर भावना भी और भावनात्मक अनुभूति भी उसके पास बहुत ऊँचे दर्जे की थी।

गोस्वामी जी ने भक्ति के क्षेत्र में प्रेम-रूपा भक्ति को अपनाया और इसकी सभी आसक्तियों में आस्था प्रदर्शित की। प्रेमा भक्ति की ग्यारह की ग्यारह आसक्तियों को अपने-अपने काव्य में बड़े ही कलात्सक तरीके से ढाला है और सभी के प्रतीक पात्र प्रस्तुत किये हैं। रामायण में नारद और भुशुण्डि जैसे पात्रों को स्थान देकर आपने गुणमाहात्म्यासक्ति का उदाहरण प्रस्तुत किया है; रूपासक्ति के उदाहरण स्वरूप वे सभी लोग हैं जो राम के रूप पर मोहित होते हैं। मिथिला के निवासी, वन जाते समय मार्ग में मिलने वाले व्यक्ति सब इसी कोटि में आते हैं। स्मरणा-सक्ति में भक्त ध्रुव, प्रहलाद इत्यादि का चित्रण है। पूजासक्ति में हनुमान और लक्ष्मण के नाम उल्लेखनीय हैं। सख्यासक्ति में बिभीषण, सुग्रीव और निषाद राज के नाम आते हैं। कान्ताशक्ति के लिए सीता का चित्रण किया गया है

वात्सल्यासक्ति के लिए दशरथ, कौशल्या इत्यादि हैं। विभीषण और हनुमान के नाम आत्मनिवेदनासक्ति का भी स्पष्टीकरण करते हैं। परमविरहासक्ति के उदाहरण स्वरूप दशरथ का नाम उल्लेखनीय है। इस प्रकार सभी प्रकार की आसक्ति को पात्रों में भरकर तुलसी ने जिस मानस काव्य की रचना की है उसमें प्रेमासक्ति की पूरी रूपरेखा प्रस्तुत की गई है।

प्रेमा भक्ति की तीनों संज्ञाओं में से 'अनन्त' का गोस्वामी जी ने निर्वहण किया है और इस प्रकार आत्मा तथा परमात्मा के बीच के सब भेद-भावों को निकालकर फेंक दिया है। इस 'अनन्त' संज्ञा की प्राप्ति के लिए बहिरंग तथा अंतरंग—दोनों प्रकार के साधनों को कवि ने अपनाया है। अंतरंग साधनों में ज्ञान तथा बहिरंग में गौणी भक्ति की पूरी प्रक्रियाएँ आती हैं। तुलसीदास ने प्रेमा भक्ति को सबसे श्रेष्ठ और सुलभ कहा है और इसी के द्वारा आत्मा तथा परमात्मा का सामीप्य भी स्थापित होता है। प्रेमा भक्ति के मार्ग के शत्रु काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, कुतर्क और कुसंगति का भी तुलसीदास ने उल्लेख किया है। वह कहते हैं कि भक्त वही है जो काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार और कुतर्क का परित्याग कर दे।

भक्त होने के नाते भावना कवि के अन्दर प्रखर थी जहाँ उसने एक ओर प्रेमा भक्ति की ग्यारह आसक्तियों को लेकर उन्हें पात्रों में भरा है वहाँ उनके उपयुक्त स्थिति आने पर भावुक स्थलों का चित्रण भी बहुत ही मार्मिक ढंग से किया है। तुलसी की रचनाओं में भी कोई ऐसा मार्मिक स्थल नहीं है जिसे कवि यों ही छोड़ गया हो। यह सच है कि सूर की भाँति भावना के क्षेत्र में तुलसी ने उतनी लम्बी उड़ानें नहीं भरी और वह परिमार्जन के साथ ही आगे बढ़ा है, परन्तु फिर भी आवश्यक अंग और स्थल अधूरे नहीं रह पाये हैं। मानव-जीवन के भावनात्मक पहलुओं पर बड़ी सतर्कता और कोमलता के साथ कवि ने कलम चलाई है। कवि के चित्रण बड़े साफ, निखरे हुए, आकर्षक और प्रभावात्मक बन पड़े हैं। भावुक भक्त के हृदय की तो बात पूछो ही नहीं वरन् साधारण लोग भी उन्हें पढ़कर गद्-गद् हो उठते हैं। शिशु का एक चित्र देखिए:

> बर दन्त की पंगति कुन्द कली, अधराधर पल्लव खोलन की।
> चपला चमकै घन बीच जगै, छवि मोतिन माल अमोलन की॥
> घुंघरारी लटैं लटकै मुख ऊपर, कुण्डल लोल कपोलन की।
> निछावरि प्रान करै तुलसी, बलि जाऊँ लला इन बोलन की॥
>
> —कवितावली।

सीता के पुर से निकलकर बन-गमन का भावनात्मक चित्र देखिये; नाजुक खयाली की कवि ने हद कर दी है:

पुर तें निकसी रघुबीर बधू, धरि धीर दये मग में डग द्वै ।
झलकीं भरि भाल कनी जल की, पुट सूखि गये मधुराधर वै ॥
फिर पूछति है 'चलनो अब केतिक, पर्नकुटी करिबा कित ह्वै ।'
तिय की लखि आतुरता पिय की अँखियाँ अति चारु चलीं जल च्वै ॥

इसी प्रकार रामवियोग में तड़पते हुए दशरथ, भरत, कौशल्या और उनके घोड़ों के भी चित्रण कवि ने खूब किये है। बाल्यावस्था के कलात्मक चित्र अंकित किये है। जनक की वाटिका मे राम और सीता के मिलन का चित्र बड़ा ही भावना प्रधान और चित्ताकर्षक है। मानवीय वृत्तियों और भवनाओं के चित्रणों के साथ ही-साथ कवि ने प्रकृति का चित्रण भी पूर्ण भावनात्मक ंग से किया है। चित्रकूट के जो चित्र कवि ने अंकित किये हैं वे बहुत ही सरल और कोमल हैं। इस प्रकार कवि ने वात्सल्याकर्षण, प्रेमाकर्षण, सौंदर्याकर्षण, सभी को लिया है और अपनी कुशल तूलिका से उसका चित्रण किया है।

भावना का जो उद्रेक तुलसी की रचना में है उसम सरसता भी उत्कृष्ट श्रेणी की पाई जाती है। भावना का मानसिक दिशाओं के चित्रण में समयोपयुक्त रस को कविता में भरने का प्रयास बहुत ही सफलता पूर्वक हुआ है। चित्रणों में कहीं भी ऐसे स्थल रह नहीं गये है जहाँ रसानुभूति हो सकती हो और हुई न हो। सीता और राम के सात्विक प्रेम को लेकर भी प्रथम मिलन में मिलन-श्रृंगार की झलक स्पष्ट हो उठती है। यह सत्य है कि तुलसी का यह पक्ष जायसी और सूर से पीछे रह जाता है, परन्तु जो भारतीय संकोच हमें इसमें दिखलाई पड़ता है वह जायसी के मुँह-तोड़ प्रेम में कहाँ उपलब्ध हो सकता है।

भक्त कवि तुलसी इस प्रकार भावना के क्षेत्र में किसी से भी पीछे नहीं कहा जा सकता। भावनात्मक स्थलों की नजाकत का उसने ध्यान रखा है और उनके चित्रण में काफी कुशलता बरती है।

तुलसी का मूल्यांकन हम उक्त तीन ही प्रधान धाराओं के अंतर्गत कर सकते है।

अध्याय ६

राम-साहित्य की परम्परा

रामभक्ति शाखा

भक्ति के सम्यक प्रचार और प्रसार के लिए जिस सगुण निरूपण की आवश्यकता थी उसका आधार सर्व प्रथम रामानुजाचार्य ने स्थापित किया। शंकराचार्य के निरूपण में ब्रह्म की सगुण सत्ता को स्वीकार तो अवश्य किया गया था, परन्तु उसका वह रूप स्थिर नहीं हो सका था जिसके धरातल पर भक्ति की अमृतवर्षा हो सके और फिर वह अमृत-धारा बहकर देश की सूखती हुई धार्मिक खेती को एक बार फिर से हरियाली प्रदान कर सके। आपने विशिष्टाद्वैतवाद का प्रसार किया और विश्व के सब प्राणियों को चिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म का अंश माना।

रामानुज की शिष्य-परम्परा देश में फैली। १४ वीं शताब्दी में राघवानन्द जी, जो काशी में रहते थे और वैष्णव संप्रदाय के आचार्य थे, उन्होंने रामानन्द जी को अपना शिष्य बनाया। रामानन्द जी उनसे दीक्षा लेकर देशाटन के लिए निकले। कहते हैं मानिकपुर के शेख तकी से इनका मुबाहिसा हुआ। शेखतकी सिकन्दर लोदी के जमाने में हुए थे। रामानुज सम्प्रदाय में केवल द्विजों को ही दीक्षित किया जाता था, वरन रामानन्द जी ने सब जाति के लोगों के लिए कर्म का मार्ग खोल दिया और सबको दीक्षा दी जाने लगी। इसका अर्थ यह नहीं था कि वर्णाश्रम व्यवस्था को ही तोड़ डाला। समाज के क्षेत्रों में वर्ण और आश्रमों की व्यवस्था ज्यों-की-त्यों रही केवल भक्ति के क्षेत्र में सबको समान अधिकार दे दिया गया। यह भी अपने युग की एक क्रांति थी। कर्म क्षेत्र में आपने शास्त्र-मर्यादाओं को सुरक्षित रखा और उपासना के क्षेत्र मे उन्हें तोड़ दिया। महाकवि कबीर रामानन्द जी की ही शिष्य परम्परा में हैं और राम नाम को उन्होंने आपसे ही ग्रहण किया। भक्त माल में रामानन्द जी के बारह शिष्य:—अनंतानन्द, सुखानन्द, सुरसुरानन्द, नरहर्यानन्द, पीपा, कबीर, सेन, धना, रैदास, पद्मावती और सुरसुरी माने गये हैं।

इस प्रकार राम-भक्ति का प्रचार और प्रसार देश के विभिन्न भागों में हो

करते थे। परन्तु हिन्दी-साहित्य के भंडार को राम-निधि से सर्वप्रथम भर देने वाला व्यक्ति गोस्वामी तुलसीदास ही है।

तुलसीदास: विक्रम की १७ वीं शताब्दी में राम-नाम को जन-जन की वाणी बना देने का महाकवि तुलसी ने व्रत लिया और उनका वह व्रत फलीभूत हुआ। राम-नाम और राम भक्ति ने दूसरा ही रूप ग्रहण कर लिया। गोस्वामी जी के जीवन, साहित्य तथा अन्य विभिन्न आवश्यक अंगों पर पूरी पुस्तक में प्रकाश डाला गया है, इसलिए यहाँ हम उसका विशेष उल्लेख न करके इस परम्परा में आने वाले अन्य कवियों का संक्षेप में उल्लेख करते हैं।

स्वामी अग्रदास: रामानन्द जी के शिष्य अनन्तानन्द, अनन्तानन्द जी के शिष्य कृष्णदास पयहारी तथा कृष्णदास पयहारी के शिष्य अग्रदास जी थे। भक्त-माल के रचयिता नाभादास जी इन्हीं के शिष्य थे। राजपूताने में गल्ता की गद्दी पर यह रहते थे। संवत् १६३२ में यह जीवित थे। इनकी चार पुस्तकें हैं :

१. हितोपदेश उपखाणाँ बावनी।
२. ध्यान मंजरी।
३ राम-ध्यान मंजरी।
४. कुंडलिया।

अग्रदास जी की कविता कुछ-कुछ नन्ददास जी की कविता से मिलती-जुलती है।

नाभादास जी: यह अग्रदास जी के शिष्य थे। यह गोस्वामी तुलसीदास से काफी दिन बाद तक जीवित रहे। संवत् १६४२ के पश्चात् इनके प्रसिद्ध ग्रंथ भक्त माल की रचना हुई। इसमें २०० भक्तों के चमत्कारात्मक चरित्रों का चित्रण ३१६ छप्पयों में चित्रित है। इनमें पूरे जीवन-चरित्र पर प्रकाश नहीं डाला गया, केवल भक्ति को प्रश्रय देने वाली घटनाओं का ही उल्लेख किया गया है। भक्तों की करामातों का इसमें उल्लेख है, जिनका कि प्रभाव बाद में जाकर जनता के ऊपर काफी भ्रमात्मक पड़ा।

नाभादास जी की जाति के विषय में निश्चित् मत प्राप्त नहीं है। कुछ उन्हें डोम तथा कुछ क्षत्री बतलाते है। कहा जाता है यह एक बार तुलसीदास जी से काशी में मिलने गये, परन्तु उनके ध्यान-मग्न होने के कारण भेंट न हो सकी। नाभा-दास जी वहाँ एक क्षण भी इन्तजार न करके सीधे वृन्दावन में चले आये। पूजा से उठने पर जब तुलसीदास जी को यह सूचना मिली तो वह वृन्दावन में उनसे मिलने गये। वहाँ उस समय भंडारा हो रहा था। तुलसीदास जी एक साधारण से स्थान पर बैठ गये। नाभादास जी ने जान-बूझकर उधर ध्यान न दिया। सबके लिए परसने

को पसल दी गई परन्तु तुलसीदास के पास कुछ नहीं था। ऐसी दशा में उन्होंने कहते हैं एक भक्त की जूती को ही उठा लिया। इस पर नाभादास जी गद्-गद् हो उठे और उन्होंने तुलसीदास को छाती से लगा लिया। कहते हैं पहिले नाभादास जी ने तुलसी से क्रुद्ध होकर जो कविता लिखी थी उसकी प्रथम पंक्ति यह थी :

"कलि कुटिल जीव तुलसी भये वालमीकि अवतार धरि।"

आपने राम-भक्ति विषयक कविताएँ लिखी हैं। यह ब्रज भाषा में ही कविताएँ लिखते थे। आपने दो अष्टयाम भी बनाये, एक ब्रज भाषा में तथा दूसरा गद्य में। इनके गद्य और पद्य के दो उदाहरण देखिए :

गद्य: तब श्री महाराज कुमार प्रथम श्री वशिष्ठ महाराज के चरन छुइ प्रनाम करत भए। फिरि अपर वृद्ध समाज तिनको प्रनाम करत भए। फिरि श्री राजाधिराज जू को जोहार करिकै श्री महेन्द्र नाथ दशरथ जू के निकट बैठत भए।

पद्य :

अवधपुरी की सोभा जैसी। कहि नहिं सकहिं शेष श्रुति तैसी॥
रचित कोट कलधौत सुहावन। विविध रंग मति अति मनभावन॥
चहुँ दिसि विपिन प्रमोद अनूपा। चतुर बीस जोजन रस रूपा॥
सुदिसि नगर सरजू सरि पावनि। मनिमय तीरथ परम सुहावनि॥
बिगसे जलज, भृंग रस भूले। गुंजत जल समूह दोउ कूले॥
परिखा प्रति चहुँ दिसि लसति, कंचन कोट प्रकास॥
विविध भाँति नग जग भगत, अति गोपुर पुर पास॥

—'हिन्दी साहित्य का इतिहास'—रामचन्द्र शुक्ल पृष्ठ १४८

प्राणचंद चौहान: आपने संवत् १६६७ में संवाद रूप नाटक की शैली में रामायण महानाटक की रचना की। कविता का नमूना देखिये :

कातिक मास पच्छ उजियारा। तीरथ पुन्य सोम कर वारा॥
वा दिन कथा कीन्ह अनुमाना। शाह सलेम दिल्लीपति थाना॥
संवत् सोरह सै सत साठा। पुन्य प्रगास पाप भय नाठा॥
जो सारद माता करु दाया। बरनौं आदि पुरुष की माया॥
जेहि माया कह मुनि जग मूला। ब्रह्मा रहे कमल के फूला॥
निकसि न सक माया कर बाँधा। देषहु कमल नाल के राँधा॥
आदि पुरुष बरनौं केहि भाँती। चाँद सुरज तहँ दिवस न राती॥
निरगुन रूप करै सिव ध्याना। चार वेद गुन जोरि बखाना॥
तीनों गुन जानै संसारा। सिरजै पालै भेजनहारा॥

देवैं सब पै आहि न आँखी। अंधकार चोरी के साखी॥
तेहिकर बहुँ को करै बखाना। जिहि कर मर्म वेद नहिं जाना॥
माया सींव भो कोउ न पारा। शंकर पँवरि बीच होइ हारा॥
—हिन्दी साहित्य का इतिहास—रामचन्द्र शुक्ल—पृष्ठ १४६

हृदयराम : हृदयराम जी कृष्णदास जी के सुपुत्र थे। यह पंजाब के रहने वाले थे और आपने भाषा हनुमन्नाटक की रचना की है। इस ग्रंथ की भाषा परिमार्जित है और उसमें काव्य-कला का सौंदर्य भी विद्यमान है। प्रधानतया कवित्त और सवैयों का कवि ने प्रयोग किया है। संवाद बहुत ही रोचक बन पड़े है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने समय की प्रचलित पद्धतियों को अपनाया परन्तु रूपक की दिशा में उनकी प्रतिभा का प्रसार न हो सका। राम-साहित्य की उस कमी की पूर्ति हृदयराम जी ने भाषा हनुमन्नाटक की रचना करके की। इस नाटक की कविता देखिए :

देखन जौ पाऊँ तौ पठाऊँ जमलोक हाथ,
दूजौ न लगाउँ, बार करौं एक कर को।
मीजि मारौं उर ते उखारि भुजदँग, हाड़
तोरि डारौं बर अविलोकि रघुबर को।
कासों राग द्विज को, रिसात, भहरात राम॥
अति थहरात गात, लागत है धरको।
सीता को संताप मेटि प्रगट प्रताप कीनो॥
को है वह आप चाप तोरयो जिन हर को।

× × ×

एहो हनू! कह्यौ श्री रघुबीर कछू सुधि है सिय की छिति माँही?
है प्रभु लंक कलंक बिना सुबसै तहँ रावन बाग की छाँही॥
जीवति है? कहिवेई को नाथ, सु क्यों न मरी हमतें बिधु राही?
प्रान बसै पद पंकज में जम आवत है पर पावत नाहीं॥
—हिन्दी साहित्य का इतिहास—रामचंद्र शुक्ल—पृष्ठ १५०

राम-काव्य-धारा का प्रवाह उस प्रकार न हो सका जिस प्रकार कृष्ण-काव्य-धारा का हुआ। इसके अन्य कारण हों तो-हों परन्तु सबसे प्रधान कारण यह था कि तुलसी की सर्वतोमुखी प्रतिभा का जगमगाता हुआ सूर्य साहित्य के क्षेत्र में इतना प्रकाश लेकर आया कि उसके अन्दर छोटे-मोटे तारागण तो क्या चन्द्रमाओं को भी विलीन हो जाना पड़ा। इसलिए सौ-डेढ़-सौ वर्ष तक कोई अन्य प्रतिभा-सम्पन्न कवि रामचरित को लेकर सिर ऊँचा नहीं कर सका। विक्रम की १६ तथा २० वीं

शताब्दी में बाबा रामचरणदास और रघुनाथदास इत्यादि ने कुछ सुन्दर रचनाएँ लिखीं।

कृष्ण-भक्ति शाखा के प्रभाव में आकर आगे राम-भक्ति शाखा में भी शृंगार की भावना ने प्रवेश किया। इसके प्रवर्तक रामचरणदास जी हैं जिन्होंने पति-पत्नी भाव की उपासना प्रचलित की। इनकी शाखा का नाम 'स्वसुखी' शाखा पड़ा। अपने मत के प्रचार के लिए आपने बहुत से कल्पित ग्रन्थों को प्राचीन कहा और उनमें से एक ग्रन्थ 'कोशल खण्ड' के आधार पर रासलीला का भी प्रारम्भ राम से ही माना। उनका मत है कि राम ९९ रास कर चुके थे। केवल एक ही रास शेष थी और उसी के लिए कृष्ण को अवतार लेना पड़ा।

चिरान-छपरा निवासी जीवाराम जी ने रामचरणदास जी के 'पति-पत्नी-भाव' को 'सखी भाव' में बदलकर और व्यापक बना दिया। इनकी शाखा का नाम 'तत्सुखी शाखा' पड़ा। अयोध्या निवासी युगलानन्यशरण ने इस शाखा का प्रसार और प्रचार किया। इन राम भक्तों ने 'चित्रकूट' को वृन्दावन के 'कुंजवनों' की संज्ञा प्रदान की। अयोध्या में यह रसिक पंथ आज भी मौजूद है।

इस प्रकार राम के पुनीत चरित्र को उनके ही भक्तों द्वारा जहाँ एक ओर आदर्श की पराकाष्ठा पर ले जाया गया वहाँ दूसरी ओर कलंकित करके घृणा की सामग्री भी बना दिया गया। परन्तु इससे तुलसी का वह व्यापक प्रभाव नष्ट न हो सका। राम भक्तों में जो स्थान तुलसी का है वह 'पति-पत्नी-भाव' या 'सखी भाव' रखने वाले भक्तों का कदापि नहीं हो सकता।

परिशिष्ट

तुलसी-साहित्य का आधार

कवि या लेखक अपने साहित्य की रचना के लिए जिस आधार का खोजता है वह या तो काल्पनिक होता है, जिसे कवि या लेखक स्वयं अपनी कल्पना से गढ़ता है, या वह पौराणिक अथवा ऐतिहासिक होता है, जिसमें वह अपनी कहीं-कहीं पर कलात्मक पुट देकर आगे बढ़ता है, परन्तु इस दूसरे प्रकार के आधार में कवि की कल्पना को उतनी स्वतन्त्रता नहीं होती जितनी प्रथम प्रकार के आधार से प्राप्त होती है। इस आधार के अन्दर निम्नलिखित वस्तुएँ व्यक्ति खोजता है .

१. एक कथा।
२. उस कथा के पात्र।
३. उन पात्रों में भरने के लिए वह बात जो कवि या लेखक कहना चाहता है।

गोस्वामी तुलसीदास ने अपने काव्य के आधार-स्वरूप किसी काल्पनिक गाथा को मान्यता न देकर भारतीय वातावरण में आदि कवि वाल्मीकि द्वारा प्रस्तुत राम-गाथा को ही अपनाया। पात्रों के रूप में राम उनका नायक बना और रामायण के अन्य पात्र अपने अपने स्थान पर आ गये। अब रही सिद्धान्तों की बात या कवि की उन पात्रों में भरने वाली सामग्री की बात, तो वह हम तुलसी की जिस विचारधारा का इस पुस्तक के दूसरे अध्याय में उल्लेख कर चुके हैं, वही कवि ने सफलता पूर्वक उनके अन्दर अपने कलात्मक चमत्कार द्वारा भरी।

राम-कथा को आदिकवि के पश्चात् संस्कृत के बहुत से कवियों ने अपने काव्य-स्वरूपों में अपनाया है। बहुत से काव्यों तथा नाटकों की रचना राम को ही लेकर हुई है। प्राकृत-साहित्य में भी राम-गाथा को एकदम छोड़ नहीं दिया गया। राम-गाथा का उल्लेख हमें सुमात्रा, जावा, कम्बोडिया इत्यादि के लोक नाटकों में भी मिलता है।

नाना पुराण, वेद, आगम सम्मत राम कथा को लेकर गोस्वामी तुलसीदास ने अपने काव्य की भाषा में रचना की। गोस्वामी जी ने मानस की रचना में पुराण, वेद और आगमों के अतिरिक्त मिलने वाले अन्य काव्य, नाटक, चम्पू तथा इतिहास से भी सहायता ली है। फिर इनके अतिरिक्त कवियोचित साहित्यिक पुट भी उसमें कम नहीं है। मर्यादा के अन्दर रहकर कवि ने कल्पना की उड़ानों के भी बन्धन खोले हैं।

मानस में मूल कथा राम की ही है परन्तु कई आनुषंगिक कथाएँ भी उसमें हैं। ये सब कवि ने उक्त ग्रन्थों से ले ली हैं। उक्तियों के लिए आपने पूर्ववर्ती कवियों की रचनाओं से सहायता ग्रहण की है। मूल कथा के क्रम में कहीं-कहीं भेद होने पर भी कथा आद्योपान्त वाल्मीकि द्वारा दी गई ही कथा है।

वाल्मीकि रामायण में राम को विष्णु का अवतार माना गया है। बाल-काण्ड में ब्रह्मा आदि देवता विष्णु को लोक कल्याण के लिए नियुक्त करते हैं। विष्णु इसीलिए दशरथ को अपना पिता बनाते है। इसी प्रकार राम में विष्णु का समावेश वाल्मीकि ने अन्यत्र भी कई स्थलों पर किया है। परन्तु इन सांकेतिक प्रयोगों को विद्वान् लोग कम महत्त्व देकर वाल्मीकि द्वारा चित्रित राम के चित्रण में भगवान् की स्थापना न करके केवल एक आदर्श पुरुष की ही स्थापना करते हैं। आर्य सभ्यता का प्रतीक राम वाल्मीकि ने अपने काव्य में चित्रित किया था। उनका राम महान् मानव हो सकता है परब्रह्म राम नही। लेकिन गोस्वामी तुलसीदास का राम परब्रह्म राम था। इस समय निर्गुण विचारधारियों ने जनता की आस्था को राम के ईश्वरीय स्वरूप से हटा दिया था। इसीलिए तुलसीदास जी वाल्मीकि की भांति बीच का मार्ग ग्रहण नहीं कर सकते थे। तुलसी ने परात्परब्रह्म राम की नर लीलाओं को लेकर मानस की रचना की। यह प्रेरणा गोस्वामी तुलसीदास को वाल्मीकि रामायण से न मिलकर अध्यात्म रामायण से मिली। वाल्मीकि के नर-श्रेष्ठ राम में इस प्रकार तुलसीदास ने ईश्वरत्व की स्थापना की और जनता के बीच निर्गुण पंथियों की फैली सगुण के प्रति अंधकारपूर्ण भावना को उखाड़ फेंकने का सफल प्रयास हुआ।

तुलसी-साहित्य के आधारों में हम वाल्मीकि रामायण तथा अध्यात्म रामायण को प्रधान रूप से पाते है। कथा प्रवाह इन्हीं दो आधारों को लेकर चलता है परन्तु यत्र-तत्र कुछ उक्त दोनों ग्रन्थों से मुक्त प्रसंग भी मिलते है जिनकी प्रेरणा कवि को हनुमन्नाटक, प्रसन्न राघव इत्यादि ग्रन्थों से मिली है। जनकपुर में जनक-वाटिका में राम और सीता का साक्षात्कार इसी प्रकार की घटना है, जिसने काव्य को चार चाँद लगा दिये है। इसी प्रकार के अन्य बहुत से स्थल हैं। वन-पथ में नर-नारियों का राम लक्ष्मण और सीता को देखकर वर्णन करना भी कवि की मौलिकता के ही द्योतक है। कथा में बहुत से संवाद मौलिक है। रामचरित की परम्परा में कवि लिखता है :

व्यास आदि कवि पुंगव नाना, जिन्ह सादर हरि सुजस बखाना।
चरन कमल बन्दहुँ तिन्ह केरे, पुरवहुँ सकल मनोरथ मेरे।

राम के स्वरूप का चित्रण कवि ने पौराणिक ढंग से ही किया है। श्वेता-

श्वर उपनिषद, नारदीयनिषद और श्रीमद्भगवतगीता के बहुत से श्लोकों का कविता बद्ध उल्था भी हम देखना चाहें तो मानस में मिल सकता है। तुलसी ने तो प्राचीन काव्यों का सार तत्व ही मानस में भरने का सफल प्रयास किया है। विष्णु पुराण, वाल्मीकि रामायण के तो बहुत से तत्वों को ज्यों-के-त्यों भाषा बदलकर रख दिया गया है। यह सब कवि की योग्यता तथा सर्व विचार समन्वय की क्षमता के द्योतक हैं। यहाँ यदि कुछ विद्वान् यह समझ बैठें कि गोस्वामी जी ने उक्त ग्रन्थों के भावों इत्यादि की चोरी करके अपने ग्रन्थ की रचना की है, तो यह विचार बहुत ही संकुचित दृष्टिकोण का द्योतक होगा। तुलसी का अध्ययन बहुत व्यापक था और समन्वय की भावना उसके अन्दर महान् थी। वह अपने युग की फैली हुई धार्मिक विषमता को समाप्त करके एक ऐसी धारा प्रवाहित करना चाहते थे कि जिसमें सब छोटी-मोटी धाराएँ आकर विश्राम कर सकें।

तुलसी ने जो कुछ भी प्राचीन ग्रन्थों में पढ़ा और सुना उसे अपने विचारों तथा भावनाओं में सँजोकर अपने साहित्य में भर दिया। यही एक सफल कलाकर की प्रतिभा की चरम सफलता है। जहाँ कहीं की जो भी उक्ति उन्हें रुची वह उन्होंने अपनी बना ली और अपने साहित्य में उसे सँजोकर काव्यात्मक रूप दे दिया। यह सब गोस्वामी जी ने चोरी की नीयत से न करके जान पूछकर किया है। परम्परा से प्राप्त राम-कथा को कवि ने अपनाया है और उसमें जो कुछ भी सामग्री उसे मिली है जुटाने का प्रयास किया है। सनातन धर्म के सिद्धान्तों का प्रतिपादन ही उनका साहित्य है। तुलसी साहित्य में भारतीयता का प्रतिपादन विशेष रूप से सामने आता है। तुलसी ने अपने साहित्य में जो कुछ भी कहा है वह भारतीय वातावरण में पहिले से मौजूद था, उसी का प्रतिपादन तथा स्पष्टीकरण उनका साहित्य है।

कथा की परम्परा : राम कथा सर्व प्रथम शिव ने कुम्भज ऋषि से सुनी थी। सनकादि ऋषियों ने भी यह कथा कुम्भज ऋषि से ही सुनी थी। यही कथा शिव ने लोमश मुनि से कही। फिर लोमश मुनि ने यह कथा काकभुशुण्डि को सुनाई। काकभुशुण्डि से यह कथा याज्ञवल्क्य ने सुनी :

'तेहि सन जागबलिक पुनि पावा'

कथा की इस परम्परा का उल्लेख गोस्वामी तुलसीदास ने मानस में यत्र-तत्र किया है। इसी कथा को कवि ने अपने साँचे में ढाला है :

जागबलिक जो कथा सुहाई, भारद्वाज मुनिबरहि सुनाई।
कहिहऊँ सोइ संवाद बखानी, सुनहु सकल सज्जन सुखमानी॥

मानस की कथा में चार वक्ता हैं और चार ही श्रोता। जो कथा शिव ने

पार्वती तथा काकभुशुण्डि ने गरुड़ को सुनाई थी वही भारद्वाज को याज्ञवल्क्य ने सुनाई और उसी कथा को अपने गुरु से गोस्वामी तुलसीदास ने सुनकर भक्तों के हेतु मानस की रचना की।

गरुड़ विष्णु के साथ रहते थे और अत्यन्त ज्ञानी थे। एक दिन उन्हें भी अज्ञान ने घेर लिया। उन्होंने राम को मेघनाद के नागपाश में बंधा देखा तो भ्रम हुआ कि यह कैसे परब्रह्म राम है। अपना सदेह मिटाने के लिए वह काकभुशुण्डि के पास पहुँचे।

दूसरी ओर सती शिव के साथ राम को सीता के विरह में वन के अन्दर मानवोचित आचरण करती हुई देखती है। उसे भी भ्रम होता है। शिव तो अपने इष्टदेव का अभिवादन करके प्रसन्न होते है परन्तु सती का भ्रम नहीं टूटता। सती ने शिव पर अपना भ्रम प्रकट किया तो शिव ने समझाया परन्तु उसका भ्रम तब भी दूर न हुआ और वह राम की परीक्षा लेने के लिए सीता का वेश कारण करके उनके सामने-सामने चलने लगी। राम यह देखकर मन ही मन हँसे और :

जोरि पानि प्रभु कीन्ह प्रनामू। पिता समेत लीन्ह निज नामू॥
कहेंउ बहोरि कहाँ बृष केतू। बिपिन अकेलि फिरहु केहि हेतू॥

सीता का वेश धारण करके सती शिव के लिए ग्राह्य नहीं रही थीं। सती को भी अपनी मूर्खता पर बड़ी ग्लानि हुई और वह अपने पिता के यज्ञ में जाकर भस्म हो गई, तथा फिर हिमाँचल के घर पार्वती के रूप में जन्म लिया।

इसी प्रकार का भ्रम एक बार भारद्वाज ऋषि के मन में भी उत्पन्न हुआ जिसका निराकरण याज्ञवल्क्य ने किया।

ये सब कथाएं गोस्वामी तुलसीदास ने इसलिए दी है कि जिससे आम लोगो में राम के परब्रह्म होने के विषय में जो शकाएँ उत्पन्न हों उनका रामायणी लोग इन कथाओं को सुनाकर निराकरण कर सकें।

मानस में जहाँ भी ऐसे प्रसंग आये है कि पाठकों को राम के परब्रह्म होने में संशय होने लगे तो गोस्वामी जी वही पर उसे स्पष्ट करके कहते है कि यह तो नर-लीला के हेतु सब कुछ हो रहा है वरन् तो राम वास्तव में परब्रह्म हैं। जब गरुड़, पार्वती और भारद्वाज को भ्रम हो सकता है तो साधारण लोगों की तो बात ही क्या है ?

परब्रह्म राम का कपट-मृग को पीछे दौड़ना, सीता की खोज में वन-वन विरहाकुल घूमना इत्यादि उनके परब्रह्मत्व को ठेस लगाते है, परन्तु कवि उन्हें अपने इष्टदेव की नर-लीला मात्र ही समझता है।